सबमें उन्हें वे ही ग्रन्थ प्रिय थे जिनमें 'करुणाकर भाषण' थे अर्थात् जिनमें भगवान्‌की करुणप्रार्थना थी, भगवान् और भक्तका प्रेम जिनमें व्यक्त हुआ था, जो प्रेमसे भगवान्‌की बलैया लेनेमें सहायक थे। केवल शास्त्रीय प्रक्रिया बतलानेवाले शास्त्रीय ग्रन्थ उन्हें नहीं रुचते थे। 'करुणाकर भाषण' भी नये-पुराने अनेक कवियोंके काव्योंमें ग्रथित किये हुए मिलेंगे, पर केवल इतनेसे उनको सन्तोष नहीं हो सकता था। उन्हें तो ऐसे सगुणभक्तोंके 'करुणाकर भाषणों' का पाठ करना था जिन्होंने भगवान्‌को 'मूर्तिमान्' किया हो, अर्थात् जिन्हें सगुण-साक्षात्कार हुआ हो, जिन्होंने भगवान्‌को प्रत्यक्ष देखा हो, भगवान्‌से प्रेमालाप किया हो। इन सगुण भक्तोंके 'करुणाकर भाषणों' का पाठ करनेका हेतु भी तुकारामजीने उपर्युक्त अभंगके चौथे चरणमें बता दिया है। उन सन्तोंको जो लाभ हुआ अर्थात् भगवान्‌को 'मूर्तिमान्' करके जो प्रेम-सुख उन्होंने प्राप्त किया वही प्रेम-सुख तुकाराम चाहते थे और उनका उत्साहबल इतना दिव्य था कि वह यह समझते थे कि 'भगवान्‌की गुहार कर' हम उसे प्राप्त कर लेंगे। जिन सन्तोंको भगवान्‌का सगुण साक्षात्कार हुआ उन्हींके वचनोंका पाठ करनेका हेतु तुकारामजीने इस प्रकार व्यक्त कर ही दिया है। पर सन्त भी तुकारामजी ऐसे चाहते थे जो पूर्व-परम्पराको लेकर चले हों। कोई नया धर्मपन्थ चलानेवाले, नया सम्प्रदाय प्रवर्तित करानेवाले, कोई नया आन्दोलन उठानेवाले महात्मा वह नहीं चाहते थे। धर्मक्रान्ति या बगावत उन्हें प्रिय नहीं थी। पहलेसे ही जो मार्ग बने हुए हैं, पर बीचमें कालवशात् जो लुप्त या दुर्गम हो गये उन्हें फिरसे स्वच्छ और सुगम बनानेवाले महात्माओंके ही वचन उन्हें प्रिय थे। 'आम्ही (हम) वैकुण्ठवासी' अभंगमें तुकारामजीने अपने अवतारका प्रयोजन बताया है। उसमें भी यही कहा है कि प्राचीन कालमें 'ऋषि जो कुछ कह गये' उसीको 'सत्यभावसे बर्तनेके लिये' हम आये हैं और 'सन्तोंके मार्ग झाड़-बुहारकर स्वच्छ करेंगे' यही हमारा काम है।

पुढिलांचे सोयी माझ्या मना चालीं॥
माताची आणिली नाहीं बुद्धि॥

'पूर्वके सन्तोंके मार्गपर चलें यही मेरी मनःप्रवृत्ति है, मैंने अपनी बुद्धिसे कोई नया मत नहीं ग्रहण किया है।' तुकारामजी कहते हैं, 'मेरा साक्षीका व्यवहार

है।' तुकाजीने बालक्रीड़ाके जो अभंग रचे उनमें उन्होंने यही कहा है कि 'शिष्टोंके बल-भरोसे गीत गाऊँगा।' दूसरे एक स्थानमें तुकाजी कहते हैं कि 'मेरी वाणी क्या है मूर्खकी बकवाद है, बच्चेकी तोतली बातें हैं' इस प्रकार अपनेको कवित्वहीन बतलाते हुए यह भी बतला देते हैं कि 'आप सन्तजनोंका जूठन सेवन करके, आपलोगोंका सहारा पाकर ही मेरे मुखसे प्रासादिक वाणी निकली।' (**आधारें बदलीं प्रसादाची वाणी। उच्छिष्ट सेवनीं तुमचिया॥**) तुकाजीने फिर भगवान्‌से यही प्रार्थना की है कि '**सन्त गेले तया ठाया। देवराया पाववी॥**' (पूर्वके सन्त जहाँ पहुँचे, वहीं हे भगवन्! मुझे पहुँचाओ।)'

तात्पर्य, पूर्वपरम्पराको लेकर चलनेवाले तथा भगवान्‌को मर्तिमान् करनेवाले पहुँचे हुए सन्तोंके ही वचनोंका पाठ तुकाजी करते थे और उन सन्तोंको जो भगवद्दर्शन हुए वे ही दर्शन तुकाराम चाहते थे। कौन ऐसे सन्त थे और कौन-से ग्रन्थ तुकाराम-प्रिय हुए यह विचार-प्रसङ्गसे आप ही आगे आनेवाला है। पुराण-ग्रन्थों और साधु-सन्तोंके ग्रन्थोंका ही सहारा तुकाजीने लिया और उनका सार अपने हृदयमें संग्रह किया। बृहदारण्यकमें कहा है, शब्दोंका अध्ययन बहुत न करे। कारण, वाणीकी वह व्यर्थकी थकान है। ग्रन्थोंके सिद्धान्त ध्यानमें आनेपर ग्रन्थोंका प्रयोजन नहीं रहता। ग्रन्थोंके सिद्धान्त जहाँ ज्ञात हुए और यह लगन लगी कि महात्माओंके अनुभव मुझे भी प्राप्त हों, आत्यन्तिक सुखका अधिकारी मैं भी बनूँ और इसके लिये जी जहाँ छटपटाने लगा वहाँ ग्रन्थाध्ययन धीरे-धीरे कम होने ही लगता है और अन्तरङ्गका अभ्यास तब आरम्भ होता है। पीछेकी अवस्थामें तुकारामजीने ही कहा है—

पाहों ग्रंथ तरी आयुष्य नाहीं हातीं।
नाहीं ऐसी मती अर्थ कळे॥ १॥
(देखूँ ग्रन्थ सारे तो आयु नहीं हाथ।
मति भी न दे साथ अर्थ जानूं॥१॥)
होईल तें हो या विठोबाच्या नांवें।
अर्जिलें तें भावें जीवीं धरूँ॥ २॥
(होना हो सो होय विट्ठल-आसरे।
आये भक्तिसे रे उर धरूँ॥२॥)

'सब ग्रन्थ देखना चाहें तो आयु अपने हाथमें नहीं। इतनी बुद्धि भी नहीं जो अर्थ समझमें आवे। इसलिये विठोबाके नामपर जो हो सो हो, जो कुछ (ज्ञान) मिलेगा उसे भावपूर्वक जीसे लगा रखूँगा, ग्रन्थके साररूप हरिको जब चित्त ले लेता है तब ग्रन्थका कार्य समाप्त हो जाता है।' अस्तु, तुकारामजीने कौन-से ग्रन्थ देखे, किन सन्तोंके वचनोंका पाठ किया या पठित ग्रन्थोंमेंसे क्या सार ग्रहण किया, यह अब देखें।

६-महीपतिबावाके उद्गार

तुकारामजीके ग्रन्थाध्ययनका वर्णन महीपतिबावाने अपने 'भक्त-लीलामृत' (अ० ३०) में अपनी प्रेम-परा वाणीसे इस प्रकार किया है—

'नामदेवके अभंगोंका नित्य पाठ करते हुए (तुकाराम) नाचते-गाते थे। एकादशीको व्रत रहकर सन्तोंके साथ जागरण करते थे, उन्होंने अन्य सन्तोंके भी ग्रन्थ देखे। विख्यात यवन-भक्त कबीरका वचनामृत बड़ी प्रीतिसे पान करते थे। श्रीज्ञानेश्वरने अपने श्रीमुखसे जो महान् अध्यात्म ग्रन्थ कहा उसकी शुद्ध प्रति इस वैष्णव वीरने प्राप्त की और उसका अध्ययन किया। सन्त एकनाथने भागवतपर जो टीका की उसका भी शुद्ध ग्रन्थ इन्होंने बड़े प्रयाससे प्राप्त किया। इस ग्रन्थका मनन करनेके लिये तुकाराम भण्डारापर्वतपर एकान्त स्थानमें जाकर बैठा करते थे। पूर्वाभ्यासमें तुकारामजीके सहायक स्वयं कैवल्यदानी भगवान् थे। पर्वतपर बैठकर ग्रन्थका पारायण करके अब वह अर्थान्वय ध्यानमें लाते थे। ग्रन्थके वचन स्मरण रखने और कण्ठ करनेमें तुकारामजीको विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता था, दिन-रात मनन करते थे, इससे अक्षर कण्ठस्थ हो जाते थे। एकनाथ महाराजके प्रासादिक वचन जिसमें भरे हुए हैं उस भावार्थ रामायणका भी निज प्रीतिसे पारायण करते थे। श्रीमद्भागवतकी सरस कथाएँ उन्होंने पढ़ीं और किन्हीं महापुरुषके मुखसे भी सुनीं। श्रीहरिकी लीला विशेष 'अभ्यास' के साथ देखी-सुनी। श्रीज्ञानेश्वरके योगवासिष्ठ, अमृतानुभव ग्रन्थोंका मनन कर अर्थकी खोजकी और पुराण भी बहुत श्रवण किये।'

महीपतिबावाने जिन ग्रन्थोंका उल्लेख किया है उन्हें तुकारामजीने 'एकान्तमें बैठकर देखा और उनका अर्थ ढूँढ़ा', इसमें संदेह नहीं। नामदेवके अभंग 'पाठ करते हुए वह नाचा करते थे' यह तो स्पष्ट ही है। सर्वप्रथम

नामदेवके ही अभंगोंका पाठ और मनन किया। कबीरके दोहे उन्होंने 'बड़ी प्रीतिसे' पढ़े यह बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि तुकारामजीने स्वयं भी वैसे ही दोहे रचे हैं। ज्ञानेश्वरके ग्रन्थोंकी 'शुद्ध प्रतियाँ' उन्होंने प्राप्त कीं, महीपतिबावाका यह कथन बड़े ही महत्त्वका है। ज्ञानेश्वरके ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और योगवासिष्ठ (?) ग्रन्थोंका उन्होंने 'मनन किया और अर्थ ढूँढ़कर' रखा। महीपतिबावाने इसी प्रसङ्गमें आगे चलकर कहा है कि 'हरिपाठके श्रेष्ठ अभंग जिन्हें श्रीज्ञानेश्वरने स्वमुखसे कहा उन अभंगोंको वैष्णव-वीर तुका प्रेम और आदरके साथ गाया करते थे।' अर्थात् अमृतानुभव, योगवासिष्ठ और हरिपाठके अभंग, ज्ञानेश्वर महाराजके इन चार ग्रन्थोंका तुकारामजीने मननपूर्वक अध्ययन किया था। अब रही बात एकनाथ महाराजकी। नाथभागवतका शुद्ध ग्रन्थ उन्होंने बड़े 'प्रयाससे प्राप्त किया और भण्डारापर्वतपर निर्जन स्थानमें बैठकर इन ग्रन्थोंका पारायण किया। नाथके 'भावार्थरामायण' का भी उन्होंने 'निज प्रीतिसे पारायण' किया। भागवतकी सरस कथाएँ पढ़ीं, किन्ही महापुरुषद्वारा वर्णित कथाएँ भी श्रीकृष्णलीलाप्रेमार्थ 'आयास' के साथ सुनीं। महीपतिबावाने तुकारामजीके अध्ययनका यह जो सुन्दर वर्णन किया है वह यथार्थ है, बावाकी शोधकबुद्धि और मार्मिकता देखकर साश्चर्य आनन्द होता है। तुकारामजीके ग्रन्थाध्ययनके सम्बन्धमें महीपतिबावाने जो कुछ लिखा है उसका समर्थन करनेके लिये तुकारामजीके अभंगोमें ही कोई अन्त:प्रमाण मौजूद हों तो उन्हें अब देखें। नामदेव, कबीर, ज्ञानेश्वर और एकनाथके ग्रन्थोंको तो तुकारामजीने आस्थापूर्वक देखा ही था, पर और भी उन्होंने क्या-क्या देखा था यह भी हमलोग क्रमसे देखें। मेरे विचारमें तुकारामजी मूलसंस्कृत भागवत और गीता प्राकृत टीकाओंकी सहायताके बिना स्वयं समझ सकते थे और कितने ही संस्कृत स्तोत्र, सुभाषित, भर्तृहरिके नीति और वैराग्यशतक आदि ग्रन्थ भी उन्होंने देखे थे। तात्पर्य, तुकाराम बहुश्रुत थे और उनके अभंगोंसे यह अनुमान होता है कि वह संस्कृत भी सामान्यत: अच्छी जानते थे।

७-भागवतधर्मके मुख्य ग्रन्थ—गीता और भागवत

तुकाराम भागवतधर्मके विद्यालयमें भर्ती हुए यह पहले कह ही चुके

'सब ग्रन्थ देखना चाहें तो आयु अपने हाथमें नहीं। इतनी बुद्धि भी नहीं जो अर्थ समझमें आवे। इसलिये विठोबाके नामपर जो हो सो हो, जो कुछ (ज्ञान) मिलेगा उसे भावपूर्वक जीसे लगा रखूँगा, ग्रन्थके साररूप हरिको जब चित्त ले लेता है तब ग्रन्थका कार्य समाप्त हो जाता है।' अस्तु, तुकारामजीने कौन-से ग्रन्थ देखे, किन सन्तोंके वचनोंका पाठ किया या पठित ग्रन्थोंमेंसे क्या सार ग्रहण किया, यह अब देखें।

६-महीपतिबावाके उद्गार

तुकारामजीके ग्रन्थाध्ययनका वर्णन महीपतिबावाने अपने 'भक्त-लीलामृत' (अ० ३०) में अपनी प्रेम-परा वाणीसे इस प्रकार किया है—

'नामदेवके अभंगोंका नित्य पाठ करते हुए (तुकाराम) नाचते-गाते थे। एकादशीको व्रत रहकर सन्तोंके साथ जागरण करते थे, उन्होंने अन्य सन्तोंके भी ग्रन्थ देखे। विख्यात यवन-भक्त कबीरका वचनामृत बड़ी प्रीतिसे पान करते थे। श्रीज्ञानेश्वरने अपने श्रीमुखसे जो महान् अध्यात्म ग्रन्थ कहा उसकी शुद्ध प्रति इस वैष्णव वीरने प्राप्त की और उसका अध्ययन किया। सन्त एकनाथने भागवतपर जो टीका की उसका भी शुद्ध ग्रन्थ इन्होंने बड़े प्रयाससे प्राप्त किया। इस ग्रन्थका मनन करनेके लिये तुकाराम भण्डारापर्वतपर एकान्त स्थानमें जाकर बैठा करते थे। पूर्वाभ्यासमें तुकारामजीके सहायक स्वयं कैवल्यदानी भगवान् थे। पर्वतपर बैठकर ग्रन्थका पारायण करके अब वह अर्थान्वय ध्यानमें लाते थे। ग्रन्थके वचन स्मरण रखने और कण्ठ करनेमें तुकारामजीको विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता था, दिन-रात मनन करते थे, इससे अक्षर कण्ठस्थ हो जाते थे। एकनाथ महाराजके प्रासादिक वचन जिसमें भरे हुए हैं उस भावार्थ रामायणका भी निज प्रीतिसे पारायण करते थे। श्रीमद्भागवतकी सरस कथाएँ उन्होंने पढ़ीं और किन्हीं महापुरुषके मुखसे भी सुनीं। श्रीहरिकी लीला विशेष 'अभ्यास' के साथ देखी-सुनी। श्रीज्ञानेश्वरके योगवासिष्ठ, अमृतानुभव ग्रन्थोंका मनन कर अर्थकी खोजकी और पुराण भी बहुत श्रवण किये।'

महीपतिबावाने जिन ग्रन्थोंका उल्लेख किया है उन्हें तुकारामजीने 'एकान्तमें बैठकर देखा और उनका अर्थ ढूँढ़ा', इसमें संदेह नहीं। नामदेवके अभंग 'पाठ करते हुए वह नाचा करते थे' यह तो स्पष्ट ही है। सर्वप्रथम

नामदेवके ही अभंगोंका पाठ और मनन किया। कबीरके दोहे उन्होंने 'बड़ी प्रीतिसे' पढ़े यह बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि तुकारामजीने स्वयं भी वैसे ही दोहे रचे हैं। ज्ञानेश्वरके ग्रन्थोंकी 'शुद्ध प्रतियाँ' उन्होंने प्राप्त कीं, महीपतिबावाका यह कथन बड़े ही महत्त्वका है। ज्ञानेश्वरके ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और योगवासिष्ठ (?) ग्रन्थोंका उन्होंने 'मनन किया और अर्थ ढूँढ़कर' रखा। महीपतिबावाने इसी प्रसङ्गमें आगे चलकर कहा है कि 'हरिपाठके श्रेष्ठ अभंग जिन्हें श्रीज्ञानेश्वरने स्वमुखसे कहा उन अभंगोंको वैष्णव-वीर तुका प्रेम और आदरके साथ गाया करते थे।' अर्थात् अमृतानुभव, योगवासिष्ठ और हरिपाठके अभंग, ज्ञानेश्वर महाराजके इन चार ग्रन्थोंका तुकारामजीने मननपूर्वक अध्ययन किया था। अब रही बात एकनाथ महाराजकी। नाथभागवतका शुद्ध ग्रन्थ उन्होंने बड़े 'प्रयाससे प्राप्त किया और भण्डारापर्वतपर निर्जन स्थानमें बैठकर इन ग्रन्थोंका पारायण किया। नाथके 'भावार्थरामायण' का भी उन्होंने 'निज प्रीतिसे पारायण' किया। भागवतकी सरस कथाएँ पढ़ीं, किन्ही महापुरुषद्वारा वर्णित कथाएँ भी श्रीकृष्णलीलाप्रेमार्थ 'आयास' के साथ सुनीं। महीपतिबावाने तुकारामजीके अध्ययनका यह जो सुन्दर वर्णन किया है वह यथार्थ है, बावाकी शोधकबुद्धि और मार्मिकता देखकर साश्चर्य आनन्द होता है। तुकारामजीके ग्रन्थाध्ययनके सम्बन्धमें महीपतिबावाने जो कुछ लिखा है उसका समर्थन करनेके लिये तुकारामजीके अभंगोमें ही कोई अन्त:प्रमाण मौजूद हों तो उन्हें अब देखें। नामदेव, कबीर, ज्ञानेश्वर और एकनाथके ग्रन्थोंको तो तुकारामजीने आस्थापूर्वक देखा ही था, पर और भी उन्होंने क्या-क्या देखा था यह भी हमलोग क्रमसे देखें। मेरे विचारमें तुकारामजी मूलसंस्कृत भागवत और गीता प्राकृत टीकाओंकी सहायताके बिना स्वयं समझ सकते थे और कितने ही संस्कृत स्तोत्र, सुभाषित, भर्तृहरिके नीति और वैराग्यशतक आदि ग्रन्थ भी उन्होंने देखे थे। तात्पर्य, तुकाराम बहुश्रुत थे और उनके अभंगोंसे यह अनुमान होता है कि वह संस्कृत भी सामान्यत: अच्छी जानते थे।

७-भागवतधर्मके मुख्य ग्रन्थ—गीता और भागवत

तुकाराम भागवतधर्मके विद्यालयमें भर्ती हुए यह पहले कह ही चुके

हैं। पिछले अध्यायमें यह भी दिखा चुके हैं कि उन्होंने भागवतधर्मका आचार स्वीकार कर लिया। अब जिन ग्रन्थोंमें भागवतधर्मके तत्त्वोंका प्रतिपादन किया हुआ हो उन ग्रन्थोंका अध्ययन भी सम्प्रदायके साथ आप ही प्राप्त होता है। भागवतधर्मके मुख्य ग्रन्थ दो हैं—गीता और भागवत। वेद-शास्त्रोंका सम्पूर्ण रहस्य गीता ग्रन्थमें सञ्चित किया हुआ है और गीतावक्ता श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र भागवतमें वर्णित है। श्रीकृष्णके ज्ञानाधिकारी भक्त दो हैं, एक अर्जुन और दूसरे उद्धव। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको गीतामें और उद्धवको श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें भागवतधर्मका रहस्य बताया है। इसीको मराठीमें यथाक्रम श्रीज्ञानेश्वर और एकनाथने विशद किया है। भागवतधर्मके गीता और भागवत मुख्य आधारस्तम्भ हैं और उनमें पूर्ण एकवाक्यता है। दोनों ग्रन्थोंकी शिक्षा एक है। दोनोंका यही एक उपदेश है कि सब कर्म कृष्णार्पणबुद्धिसे करके हरिभक्तिके द्वारा स्वयं तर जाय और दूसरोंको भी तारे। कुछ विद्वान् यह कहा करते हैं कि गीता प्रवृत्तिपरक है और भागवत निवृत्तिपरक; पर यथार्थमें दोनों ग्रन्थ प्रवृत्ति-निवृत्तिका परदा फाड़नेवाले ग्रन्थ हैं। दोनों ग्रन्थोंमें ज्ञान और भक्तिका मधुर मिलन हुआ है।

गीता-भागवत करिती श्रवण। अणिक चितन विठोबाचें॥
तुका म्हणे मज घडो त्यांची सेवा। तरी माझ्या दैवा पार नाहीं॥

'जो गीता और भागवत श्रवण करते हैं और श्रीहरिका चिन्तन करते हैं, तुका कहता है कि उनकी सेवाका अवसर मुझे मिले तो मेरे सौभाग्यकी सीमा न रहे।' '**पांडुरंगा करूँ प्रथम नमना**' वाले ओवीरूप शतचरणाभंगमें भागवतका स्वतन्त्र उल्लेख भी किया है—

'सत्य जो कुछ है, व्यासादिने बता दिया है। मैं उन्हींका उच्छिष्ट अपनी वाणीसे कहता हूँ। व्यासने कहा है कि भव-सिन्धुके पार जानेके लिये भक्ति ही मुख्य है। जनोंके उद्धारके लिये ही भागवत निर्माण किया...।'

तुकारामजीके कथनानुसार गीता और भागवतका 'भक्ति ही सार' है। गीता और भागवतका तुकारामजीको कितना दृढ़ परिचय था, यह अब देखा जाय।

८ गीताध्ययन

मूलगीता तुकाराम नित्य पाठ करते थे और इससे उनके अभंगोंपर जहाँ-तहाँ गीताकी छाया पड़ी स्पष्ट दिखायी देती है। कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

गीता—**निर्दोषं हि समं ब्रह्म।**

अभंग—ब्रह्म सर्वगत सदा सम । जे थें आन नाहीं विषम॥

'ब्रह्म सर्वगत सदा सम है। जहाँ और कुछ भी विषम नहीं है।'

गीता—**अन्तकाले च मामेव स्मरन्।**

अभंग—अंतकाळीं ज्याच्या नाम आलें मुखा।
तुका म्हणे सुखा पार नाहीं॥

'अन्तकालमें जिसके मुखमें नाम आ गया उसके सुखका कोई पार नहीं।'

गीता—**पद्मपत्रमिवाम्भसा।**

अभंग—मग मी व्यवहारीं असेन वर्तत।
जेसें जलाआंत पद्मपत्र॥

'व्यवहारमें मैं ऐसे रहता हूँ जैसे जलमें कमलपत्र।'

गीता—'**द्वाविमौ पुरुषौ लोके**' और '**उत्तमः पुरुषस्त्यवन्यः**'

अभंग—क्षरा अक्षरावेगळा। तुका राहिळा सोवळा॥

'क्षर-अक्षरसे अलग वह बेलाग है।'

गीता—**ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं**
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

अभंग—*जरी मागों पद इंद्राचें। तरी शाश्वत नाहीं त्याचें॥*
स्वर्ग भोग मागूं पूर्ण। पुण्य सरल्या मागुती येणें॥

'यदि इन्द्रका पद माँगूँ तो वह शाश्वत नहीं है। पूर्ण स्वर्गभोग माँगूँ तो पुण्य समाप्त होनेपर लौटना पड़ेगा।'

'**यावानर्थ उदपाने**' (गीता २। ४६) इस श्लोकका भावार्थ ज्ञानेश्वरीके अनुरूप तुकारामजीने इस प्रकार किया है—

त्यांनी गंगेचिया अंतावीण काय चाड।
आपलें तें कोड तृषेपाशीं॥

हैं। पिछले अध्यायमें यह भी दिखा चुके हैं कि उन्होंने भागवतधर्मका आचार स्वीकार कर लिया। अब जिन ग्रन्थोंमें भागवतधर्मके तत्त्वोंका प्रतिपादन किया हुआ हो उन ग्रन्थोंका अध्ययन भी सम्प्रदायके साथ आप ही प्राप्त होता है। भागवतधर्मके मुख्य ग्रन्थ दो हैं—गीता और भागवत। वेद-शास्त्रोंका सम्पूर्ण रहस्य गीता ग्रन्थमें सञ्चित किया हुआ है और गीतावक्ता श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र भागवतमें वर्णित है। श्रीकृष्णके ज्ञानाधिकारी भक्त दो हैं, एक अर्जुन और दूसरे उद्धव। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको गीतामें और उद्धवको श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें भागवतधर्मका रहस्य बताया है। इसीको मराठीमें यथाक्रम श्रीज्ञानेश्वर और एकनाथने विशद किया है। भागवतधर्मके गीता और भागवत मुख्य आधारस्तम्भ हैं और उनमें पूर्ण एकवाक्यता है। दोनों ग्रन्थोंकी शिक्षा एक है। दोनोंका यही एक उपदेश है कि सब कर्म कृष्णार्पणबुद्धिसे करके हरिभक्तिके द्वारा स्वयं तर जाय और दूसरोंको भी तारे। कुछ विद्वान् यह कहा करते हैं कि गीता प्रवृत्तिपरक है और भागवत निवृत्तिपरक; पर यथार्थमें दोनों ग्रन्थ प्रवृत्ति-निवृत्तिका परदा फाड़नेवाले ग्रन्थ हैं। दोनों ग्रन्थोंमें ज्ञान और भक्तिका मधुर मिलन हुआ है।

गीता-भागवत करिती श्रवण। अणिक चितन विठोबाचें॥
तुका म्हणे मज घडो त्यांची सेवा। तरी माझ्या दैवा पार नाहीं॥

'जो गीता और भागवत श्रवण करते हैं और श्रीहरिका चिन्तन करते हैं, तुका कहता है कि उनकी सेवाका अवसर मुझे मिले तो मेरे सौभाग्यकी सीमा न रहे।' '**पांडुरंगा करूँ प्रथम नमना**' वाले ओवीरूप शतचरणाभंगमें भागवतका स्वतन्त्र उल्लेख भी किया है—

'सत्य जो कुछ है, व्यासादिने बता दिया है। मैं उन्हींका उच्छिष्ट अपनी वाणीसे कहता हूँ। व्यासने कहा है कि भव-सिन्धुके पार जानेके लिये भक्ति ही मुख्य है। जनोंके उद्धारके लिये ही भागवत निर्माण किया...।'

तुकारामजीके कथनानुसार गीता और भागवतका 'भक्ति ही सार' है। गीता और भागवतका तुकारामजीको कितना दृढ़ परिचय था, यह अब देखा जाय।

८ गीताध्ययन

मूलगीता तुकाराम नित्य पाठ करते थे और इससे उनके अभंगोंपर जहाँ-तहाँ गीताकी छाया पड़ी स्पष्ट दिखायी देती है। कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

गीता—**निर्दोषं हि समं ब्रह्म।**

अभंग—ब्रह्म सर्वगत सदा सम । जेथें आन नाहीं विषम॥

'ब्रह्म सर्वगत सदा सम है। जहाँ और कुछ भी विषम नहीं है।'

गीता—**अन्तकाले च मामेव स्मरन्।**

अभंग—अंतकाळीं ज्याच्या नाम आलें मुखा।
तुका म्हणे सुखा पार नाहीं॥

'अन्तकालमें जिसके मुखमें नाम आ गया उसके सुखका कोई पार नहीं।'

गीता—**पद्मपत्रमिवाम्भसा।**

अभंग—मग मी व्यवहारीं असेन वर्तत।
जेसें जलाआंत पद्मपत्र॥

'व्यवहारमें मैं ऐसे रहता हूँ जैसे जलमें कमलपत्र।'

गीता—'**द्वाविमौ पुरुषौ लोके**' और '**उत्तमः पुरुषस्त्यवन्यः**'

अभंग—क्षरा अक्षरावेगळा। तुका राहिळा सोवळा॥

'क्षर-अक्षरसे अलग वह बेलाग है।'

गीता—**ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं**
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

अभंग—*जरी मागों पद इंद्राचें। तरी शाश्वत नाहीं त्याचें॥*
स्वर्ग भोग मागूं पूर्ण। पुण्य सरल्या मागुती येणें॥

'यदि इन्द्रका पद माँगूँ तो वह शाश्वत नहीं है। पूर्ण स्वर्गभोग माँगूँ तो पुण्य समाप्त होनेपर लौटना पड़ेगा।'

'**यावानर्थ उदपाने**' (गीता २। ४६) इस श्लोकका भावार्थ ज्ञानेश्वरीके अनुरूप तुकारामजीने इस प्रकार किया है—

त्यांनी गंगेचिया अंतावीण काय चाड।
आपलें तें कोड तृषेपाशीं॥

'गङ्गाका अन्त पाये बिना हमारा क्या काम रुका जाता है? हमारा मतलब तो प्यास बुझानेसे है।'

'ॐ तत्सदिति निर्देशः' का अभिप्राय तुकारामजी यह बतलाते हैं—

ॐ तत्सत् इति सूत्राचें सार। कृपेचा सागर पांडुरंग॥ १॥

(ॐ तत्सत् इति सूत्रका सार! कृपाके सागर पांडुरंग॥ १॥)

गीता—**कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।**
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

अभंग—*त्यागें भोग माझ्या येतील अंतरा।*
मग मी दातारा काय करूँ॥

'ऐसे त्यागसे भोग मेरे अन्तरमें आ जायँगे तब मैं क्या करूँगा।'

गीता—**उद्धरेदात्मनात्मानम्।**

अभंग—*आपणचि तारी आपण चिमारी।*
आपण उद्धरी आपणया॥

'आप ही तारनेवाला है, आप ही मारनेवाला है। अपना आप ही उद्धार करनेवाला है।'

गीता—**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

अभंग—*जीव न देखे मरण। धरी नवी सांडी जीर्ण॥*

जीव मरण नहीं देखता। नया धारण करता और पुराना छोड़ देता है।

गीता—**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अभंग—*न व्हावी तीं जालीं कर्मे नरनारी।*
अनुतापें हरी स्मरतां मुक्त॥

'जिनके हाथों ऐसे कर्म हुए जो कभी न हों वे नर हों या नारी, अनुतापसे हरिका स्मरण कर मुक्त होते हैं।'

गीता—**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां X X X**
X X X योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अभंग—*संसारींचें वोझें वाहता वाहविता ।*
तुजविण अनंता नाहीं कोणी ॥ १ ॥
गीतेमाजी शब्ददुंदुभिचा गाजे ।
योगक्षेम काजकरणें त्याचें ॥

'संसारका बोझ ढोनेवाला और ढोवानेवाला हे अनन्त! तेरे बिना कोई नहीं है। गीतामें दुन्दुभीका नाद निनादित हो रहा है—योगक्षेम चलाना उसीका काम है।'

अस्तु, इन उदाहरणोंसे यह पता लग जायगा कि मूल गीतासे तुकारामजीका कितना दृढ़ परिचय था। तुकारामजीके पास जो कोई परमार्थविषयक उपदेश सुननेके लिये आता, तुकाराम उसे गीताकी पोथी देते और यह कहते कि गीता और विष्णुसहस्रनामका पाठ किया करो। तुकारामजीने अपने जामाता और शिष्य मालजी गाडे येलवाडीकरसे गीता-पाठ करनेको कहा था। बहिणाबाईको उन्होंने स्वप्न दिया कि '**राम कृष्ण हरी**' मन्त्रका जप करो और उसी समय गीताकी पोथी उनके हाथमें दी और कहा कि इसका नित्य पाठ किया करो। यह बात स्वयं बहिणाबाईने अपने अभंगमें कही है। तात्पर्य, तुकारामजी गीताका नित्य पाठ किया करते थे और गीताकी बहुत-सी प्रतियाँ स्वयं लिखकर अथवा शिष्योंसे लिखाकर अपने पास रखते थे। ये प्रतियाँ जिज्ञासुओंको देनेके काम आती थीं। यह भी हो सकता है कि गीताकी ऐसी प्रतियाँ लिख-लिखकर लोग उन्हें अर्पण करते हों। इस प्रकार तुकारामजी स्वयं नित्य गीतापाठ करते थे और दूसरोंसे भी कराते थे।

९-भागवत-परिचय

गीताके समान ही मूल भागवत भी उन्होंने अच्छी तरह देखा था। गीता पढ़ना ज्ञानेश्वरी पढ़ना है और भागवत पढ़ना एकनाथी भागवत पढ़ना है। ऐसी साम्प्रदायिक परिपाटी होनेपर भी तुकारामजीने मूल गीता और मूल भागवतको अच्छी तरह देखा था, इसमें कोई सन्देह नहीं। तुकारामजीके अभंगोंमें या सभी सन्तोंकी कविताओंमें जिन प्रह्लाद, ध्रुव, गजेन्द्र, अजामिल, अम्बरीष, उद्धव, सुदामा, गोपी, ऋषि-पत्नी आदि भक्त-भक्तिनोंके बारम्बार नाम आते हैं, उनकी कथाएँ भागवतपुराणमें ही हैं। ध्रुवाख्यान भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें

'गङ्गाका अन्त पाये बिना हमारा क्या काम रुका जाता है? हमारा मतलब तो प्यास बुझानेसे है।'

'ॐ तत्सदिति निर्देशः' का अभिप्राय तुकारामजी यह बतलाते हैं—

ॐ तत्सत् इति सूत्राचें सार। कृपेचा सागर पांडुरंग॥ १॥

(ॐ तत्सत् इति सूत्रका सार! कृपाके सागर पांडुरंग॥ १॥)

गीता—**कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।**
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

अभंग—*त्यागें भोग माझया येतील अंतरा।*
मग मी दातारा काय करूँ॥

'ऐसे त्यागसे भोग मेरे अन्तरमें आ जायँगे तब मैं क्या करूँगा।'

गीता—**उद्धरेदात्मनात्मानम्।**

अभंग—*आपणचि तारी आपण चिमारी।*
आपण उद्धरी आपणया॥

'आप ही तारनेवाला है, आप ही मारनेवाला है। अपना आप ही उद्धार करनेवाला है।'

गीता—**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

अभंग—*जीव न देखे मरण। धरी नवी सांडी जीर्ण॥*

जीव मरण नहीं देखता। नया धारण करता और पुराना छोड़ देता है।

गीता—**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अभंग—*न व्हावी तीं जालीं कर्मे नरनारी।*
अनुतापें हरी स्मरतां मुक्त॥

'जिनके हाथों ऐसे कर्म हुए जो कभी न हों वे नर हों या नारी, अनुतापसे हरिका स्मरण कर मुक्त होते हैं।'

गीता—**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां X X X**
X X X योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अभंग— *संसारींचें वोझें वाहता वाहविता ।*
तुजविण अनंता नाहीं कोणी ॥ १ ॥
गीतेमाजी शब्ददुंदुभिचा गाजे ।
योगक्षेम काजकरणें त्याचें ॥

'संसारका बोझ ढोनेवाला और ढोवानेवाला हे अनन्त! तेरे बिना कोई नहीं है। गीतामें दुन्दुभीका नाद निनादित हो रहा है—योगक्षेम चलाना उसीका काम है।'

अस्तु, इन उदाहरणोंसे यह पता लग जायगा कि मूल गीतासे तुकारामजीका कितना दृढ़ परिचय था। तुकारामजीके पास जो कोई परमार्थविषयक उपदेश सुननेके लिये आता, तुकाराम उसे गीताकी पोथी देते और यह कहते कि गीता और विष्णुसहस्रनामका पाठ किया करो। तुकारामजीने अपने जामाता और शिष्य मालजी गाडे येलवाडीकरसे गीता-पाठ करनेको कहा था। बहिणाबाईको उन्होंने स्वप्न दिया कि '**राम कृष्ण हरी**' मन्त्रका जप करो और उसी समय गीताकी पोथी उनके हाथमें दी और कहा कि इसका नित्य पाठ किया करो। यह बात स्वयं बहिणाबाईने अपने अभंगमें कही है। तात्पर्य, तुकारामजी गीताका नित्य पाठ किया करते थे और गीताकी बहुत-सी प्रतियाँ स्वयं लिखकर अथवा शिष्योंसे लिखाकर अपने पास रखते थे। ये प्रतियाँ जिज्ञासुओंको देनेके काम आती थीं। यह भी हो सकता है कि गीताकी ऐसी प्रतियाँ लिख-लिखकर लोग उन्हें अर्पण करते हों। इस प्रकार तुकारामजी स्वयं नित्य गीतापाठ करते थे और दूसरोंसे भी कराते थे।

९-भागवत-परिचय

गीताके समान ही मूल भागवत भी उन्होंने अच्छी तरह देखा था। गीता पढ़ना ज्ञानेश्वरी पढ़ना है और भागवत पढ़ना एकनाथी भागवत पढ़ना है। ऐसी साम्प्रदायिक परिपाटी होनेपर भी तुकारामजीने मूल गीता और मूल भागवतको अच्छी तरह देखा था, इसमें कोई सन्देह नहीं। तुकारामजीके अभंगोंमें या सभी सन्तोंकी कविताओंमें जिन प्रह्लाद, ध्रुव, गजेन्द्र, अजामिल, अम्बरीष, उद्धव, सुदामा, गोपी, ऋषि-पत्नी आदि भक्त-भक्तिनोंके बारम्बार नाम आते हैं, उनकी कथाएँ भागवतपुराणमें ही हैं। ध्रुवाख्यान भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें

(अ० ८-९) है, जडभरतकी कथा पञ्चम स्कन्धमें (अ० ९, १०, ११), अजामिलकी कथा षष्ठ स्कन्धमें (अ० १, २, ३,) प्रह्लाद-चरित्र सप्तम स्कन्धमें (अ० ५, से १०), गजेन्द्र-मोक्षका वर्णन अष्टम स्कन्धमें (अ० २, ३), अम्बरीषका आख्यान नवम स्कन्धमें (अ० ४, ५) और दशमस्कन्धमें सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-चरित्र है। संसारके सब ग्रन्थोंमें भक्ति-सुखार्णवस्वरूप श्रीमद्भागवत ग्रन्थ अत्यन्त मधुर है। उसमें भी दशम स्कन्ध मधुरतर और उसमें फिर श्रीकृष्णकी बाललीला मधुरतम है। श्रीकृष्णकी बाललीलाओंके सम्बन्धमें आगे विस्तारपूर्वक वर्णन आनेवाला है इसलिये यहाँ लेखनीको रोक रखते हैं। अन्य सन्तोंके समान तुकारामजीको भागवतसे स्फूर्ति मिली। एकादश स्कन्धपर एकनाथ महाराजका भाष्य है और द्वादश स्कन्धमें कलिसन्तारक नाम-संकीर्तनकी महिमा वर्णित है। श्रीमद्भागवत भागवतधर्मका वेद है। श्रीज्ञानेश्वर महाराजने व्यासदेवके पद-चिह्नोंको ढूँढ़ते हुए और भाष्यकार (श्रीमत् शङ्कराचार्य) से मार्ग पूछते हुए गीतारहस्य-विशद किया है, तथापि ज्ञानेश्वरी पर भागवतकी ही छाप अधिक पड़ी है। भारतवर्षमें श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार प्रधानतः भागवतसे ही हुआ है। भागवत ग्रन्थ तुकारामजीने अनेक बार समग्र सुना, देखा और अपनी भाषामें दोहराया है। भागवतके अनेक श्लोक उन्हें कण्ठ हो गये, उनका मर्म उनके हृदयमें उतर आया और उसकी भक्तकथाएँ उनकी भक्तिके लिये उद्दीपक हुईं। इस विषयमें किसीको कुछ सन्देह न रह जाय, इसलिये अन्तःप्रमाणोंके द्वारा ही यह देखा जाय कि तुकारामजीके विचार और वाणीपर भागवतका कितना गहरा प्रभाव पड़ा था—

(१) चतुर्थ स्कन्ध (अ० ८) में नारदजीने ध्रुवको भगवत्-स्वरूपका ध्यान बताया है। इसी प्रकार भागवतमें अन्यत्र श्रीमहाविष्णुका वर्णन है। दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णका रूप-वर्णन भी वैसा ही है। तुकारामजीने श्रीपण्ढरपुरनिवासी श्रीविट्ठलका जो रूप-वर्णन किया है वह भागवतके उस रूप-वर्णनके साथ मिलाकर देखनेयोग्य है—

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम्।
शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥ ४७॥
किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम्।
कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम्॥ ४८॥

वनमालिनम्=*तुलशीहार गळां, रुले माल कंठीं वैजयन्ती।*
गलेमें तुलसीका हार है, वैजयन्ती माला लटक रही है।
मेघश्यामं पीतकौशेयवाससम्= *कासे सोनसळा पांघरे पाटोला।*
घननील सावळा वाइयानो ॥ १ ॥
(काछे पीतांबर पीतपट धारे ।
घननील सांवरे मेरे कान्हा ॥)
किरीटिनं कुण्डलिनम्=मकर कुंडलें तलपती श्रवणीं।
मुकुट कुंडलें श्रीमुख शोभलें। इत्यादि
(मकर कुंडल जगमगैं स्रवन। मुकुट कुंडल श्रीमुख सो हन॥)
कौस्तुभाभरणग्रीवम्=*कंठीं कौस्तुभमणि विराजीत।*
'कण्ठमें कौस्तुभमणि सोह रहा है।'
(२)'भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्'— ध्रुव
(प्रवहन् पद ध्यानमें रखिये)
प्रेम अमृताची धार। वाहे देवा ही सामोर।।
'प्रेमामृतकी धारा भगवान्के सामने भी ऐसी ही प्रवाहित होती है।'
(३) **नायं देहो देहभाजां नृलोके**
कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥

(५।५।१)

विड्भुज माने विष्ठा भक्षण करनेवाले श्वान-शूकर आदि तुच्छ योनियोंमें जो कष्टदायक विषय-भोग प्राप्त होते हैं वे ही यदि नर-देह प्राप्त होनेपर भी बने रहें तो यह तो बहुत ही घृणास्पद है। इसलिये (ऋषभदेव कहते हैं) पुत्रो! दिव्य तप करके चित्तको शुद्ध करो, इससे अनन्त ब्रह्म-सुख प्राप्त करोगे। इस श्लोकके साथ यह अभंग मिलाकर देखिये—

तरीच जन्मा याव । दास विठ्ठलाचे व्हावें॥ १ ॥
नाहीं तरी काय थोड़ीं । श्वान सूकरें बापुडीं॥ ध्रु० ॥
जाल्याचें तें फल । अंगीं लागो नेदी मळ॥ २ ॥
तुका म्हणे भले । ज्याच्या नांवें मानवले॥ ३ ॥

(अ० ८-९) है, जडभरतकी कथा पञ्चम स्कन्धमें (अ० ९, १०, ११), अजामिलकी कथा षष्ठ स्कन्धमें (अ० १, २, ३,) प्रह्लाद-चरित्र सप्तम स्कन्धमें (अ० ५, से १०), गजेन्द्र-मोक्षका वर्णन अष्टम स्कन्धमें (अ० २, ३), अम्बरीषका आख्यान नवम स्कन्धमें (अ० ४, ५) और दशमस्कन्धमें सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-चरित्र है। संसारके सब ग्रन्थोंमें भक्ति-सुखार्णवस्वरूप श्रीमद्भागवत ग्रन्थ अत्यन्त मधुर है। उसमें भी दशम स्कन्ध मधुरतर और उसमें फिर श्रीकृष्णकी बाललीला मधुरतम है। श्रीकृष्णकी बाललीलाओंके सम्बन्धमें आगे विस्तारपूर्वक वर्णन आनेवाला है इसलिये यहाँ लेखनीको रोक रखते हैं। अन्य सन्तोंके समान तुकारामजीको भागवतसे स्फूर्ति मिली। एकादश स्कन्धपर एकनाथ महाराजका भाष्य है और द्वादश स्कन्धमें कलिसन्तारक नाम-संकीर्तनकी महिमा वर्णित है। श्रीमद्भागवत भागवतधर्मका वेद है। श्रीज्ञानेश्वर महाराजने व्यासदेवके पद-चिह्नोंको ढूँढ़ते हुए और भाष्यकार (श्रीमत् शङ्कराचार्य) से मार्ग पूछते हुए गीतारहस्य-विशद किया है, तथापि ज्ञानेश्वरी पर भागवतकी ही छाप अधिक पड़ी है। भारतवर्षमें श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार प्रधानत: भागवतसे ही हुआ है। भागवत ग्रन्थ तुकारामजीने अनेक बार समग्र सुना, देखा और अपनी भाषामें दोहराया है। भागवतके अनेक श्लोक उन्हें कण्ठ हो गये, उनका मर्म उनके हृदयमें उतर आया और उसकी भक्तकथाएँ उनकी भक्तिके लिये उद्दीपक हुईं। इस विषयमें किसीको कुछ सन्देह न रह जाय, इसलिये अन्त:प्रमाणोंके द्वारा ही यह देखा जाय कि तुकारामजीके विचार और वाणीपर भागवतका कितना गहरा प्रभाव पड़ा था—

(१) चतुर्थ स्कन्ध (अ० ८) में नारदजीने ध्रुवको भगवत्-स्वरूपका ध्यान बताया है। इसी प्रकार भागवतमें अन्यत्र श्रीमहाविष्णुका वर्णन है। दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णका रूप-वर्णन भी वैसा ही है। तुकारामजीने श्रीपण्ढरपुरनिवासी श्रीविट्ठलका जो रूप-वर्णन किया है वह भागवतके उस रूप-वर्णनके साथ मिलाकर देखनेयोग्य है—

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम्।
शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥ ४७॥
किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम्।
कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम्॥ ४८॥

वनमालिनम्=*तुलशीहार गळां, रुले माल कंठीं वैजयन्ती।*
गलेमें तुलसीका हार है, वैजयन्ती माला लटक रही है।
मेघश्यामं पीतकौशेयवाससम्=*कासे सोनसळा पांघरे पाटोला।*
घननील सावळा वाइयानो ॥ १ ॥
(काछे पीतांबर पीतपट धारे ।
घननील सांवरे मेरे कान्हा ॥)
किरीटिनं कुण्डलिनम्=मकर कुंडलें तलपती श्रवणीं।
मुकुट कुंडलें श्रीमुख शोभलें। इत्यादि
(मकर कुंडल जगमगैं स्रवन। मुकुट कुंडल श्रीमुख सो हन॥)
कौस्तुभाभरणग्रीवम्=*कंठीं कौस्तुभमणि विराजीत।*
'कण्ठमें कौस्तुभमणि सोह रहा है।'
(२)'भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्'— ध्रुव
(प्रवहन् पद ध्यानमें रखिये)
प्रेम अमृताची धार। वाहे देवा ही सामोर।।
'प्रेमामृतकी धारा भगवान्के सामने भी ऐसी ही प्रवाहित होती है।'
(३) **नायं देहो देहभाजां नृलोके**
कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥

(५।५।१)

विड्भुज माने विष्ठा भक्षण करनेवाले श्वान-शूकर आदि तुच्छ योनियोंमें जो कष्टदायक विषय-भोग प्राप्त होते हैं वे ही यदि नर-देह प्राप्त होनेपर भी बने रहें तो यह तो बहुत ही घृणास्पद है। इसलिये (ऋषभदेव कहते हैं) पुत्रो! दिव्य तप करके चित्तको शुद्ध करो, इससे अनन्त ब्रह्म-सुख प्राप्त करोगे। इस श्लोकके साथ यह अभंग मिलाकर देखिये—

तरीच जन्मा याव । दास विठ्ठलाचे व्हावें॥ १ ॥
नाहीं तरी काय थोड़ीं । श्वान सूकरें बापुडीं॥ ध्रु० ॥
जाल्याचें तें फल । अंगीं लागो नेदी मळ॥ २ ॥
तुका म्हणे भले । ज्याच्या नांवें मानवले॥ ३ ॥

'(मनुष्य) जन्म तो ही लो जो विट्ठलनाथके दास हो, नहीं तो कुत्ते और सूअर (विड्भुज) क्या कम हैं? जन्म लेना तभी सफल है जब अङ्गमें मैल न लगने दे (**सत्त्वं शुद्ध्येत्**) तुका कहता है, वे ही भले हैं जिनका मन भगवन्नाममें लग गया।'

(४) संसारमें गृह-सुत-दारा और द्रव्यादिके पीछे भटकनेवाले मनुष्यको इस भवारण्यमें प्रचण्ड बवण्डरसे उड़नेवाली धूलसे भरी हुई दिशाएँ नहीं सूझतीं—

क्वचिच्चवात्योत्थितपांसुधूम्रा
दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः॥

(५।१३।४)

तुका म्हणे इहलोकींच्या वेव्हारें।
नये डोले धुरें भरूनि राहे॥

'तुका कहता है, इस लोकके व्यवहारसे आँखें धुएँसे भरी हुई न रखो।'

(५) षष्ठ स्कन्धमें अजामिलके कथा-प्रसङ्गमें कहा है—

न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करैः।

(२।४८)

तान्नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्॥

(३।२७)

इन दो चरणोंसे बिलकुल मिलता हुआ तुकारामजीका यह अभंग है—

यम सांगे दूतां। तुम्हां नाहीं तेथें सत्ता॥
जेथें होय हरिकथा। सदा घोष नामाचा॥ १॥
नका जाऊँ तया गांवां। नामधारका च्या शिवा॥
सुदर्शन यावा। घरटी फिरे भोंवती॥ ध्रु०॥
चक्रगदा घेऊनी हरी। उभा असे त्यांचे द्वारीं॥

'यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं कि जहाँ हरि-कथा होती है, नाम-संकीर्तन होता है वहाँ घुसनेका तुमलोगोंको कोई अधिकार नहीं है। नामधारकोंके मङ्गलग्राममें तुमलोग मत जाओ, वहाँ प्रत्येक गृहपर सुदर्शनचक्र घूमता रहता है, प्रत्येक द्वारपर श्रीहरि चक्र और गदा लिये खड़े रहते हैं।'

(६) **मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौज-**
स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः।

नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय॥
(७।९।९)

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥
(७।९।१०)

परम भक्त प्रह्लाद कहते हैं—धन, अभिजन, रूप, तप, पाण्डित्य (श्रुत), ओज, तेज, प्रताप, बल, पौरुष, प्रज्ञा और अष्टाङ्गयोग—ये गुण भगवान्की प्रसन्नताके कारण नहीं होते। गजेन्द्र पशु था और उसमें इन गुणोंमेंसे एक भी गुण नहीं था। भगवान् केवल उसकी भक्ति पाकर प्रसन्न हुए।' (अब दूसरे श्लोकमें यही बतलाते हैं कि भक्तिके सिवा भगवान् और कुछ नहीं चाहते—) 'उपर्युक्त बारहों गुण यदि किसी ब्राह्मणमें हैं पर वह कमलनाभभगवान्की सेवासे विमुख है तो उसकी अपेक्षा वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जिसने अपना मन, वचन, कर्म, अर्थ और प्राण भगवान्को समर्पित कर दिया है। कारण, हरि-भक्त चाण्डाल भी अपने कुलको पावन करता है, पर गर्वका पुतला बना हुआ नास्तिक ब्राह्मण अपना भी उद्धार नहीं कर सकता। ये दोनों श्लोक तुकारामजीके दो अभङ्गोंमें भावरूपसे आ गये हैं—

नव्हती ते संत करितां कवित्व।=पांडित्य
संताचे ते आप्त नव्हती संत॥ १॥=अभिजन
नव्हती ते संत वेदाच्या पठणें।=श्रुत
नव्हती ते संत करितां तपतीर्थाटण॥=तप इ० इ०

'संत वे नहीं जो कवित्व करते हैं, जिनका बड़ा परिवार है, जो वेदपाठ या तप-तीर्थाटन आदि करते हैं।'

अब दूसरा अभंग देखिये—

अभक्त ब्राह्मण जळो त्याचे तोंड। काय त्यासी रांड प्रसवली॥ १॥
वैष्णव चांभार धन्य त्याची माता। शुद्ध उभयतां कुळ याती॥ध्रु०॥

'(मनुष्य) जन्म तो ही लो जो विट्ठलनाथके दास हो, नहीं तो कुत्ते और सूअर (विड्भुज) क्या कम हैं? जन्म लेना तभी सफल है जब अङ्गमें मैल न लगने दे (**सत्त्वं शुद्ध्येत्**) तुका कहता है, वे ही भले हैं जिनका मन भगवन्नाममें लग गया।'

(४) संसारमें गृह-सुत-दारा और द्रव्यादिके पीछे भटकनेवाले मनुष्यको इस भवारण्यमें प्रचण्ड बवण्डरसे उड़नेवाली धूलसे भरी हुई दिशाएँ नहीं सूझतीं—

क्वचिच्चवात्योत्थितपांसुधूम्रा
दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः॥

(५।१३।४)

तुका म्हणे इहलोकीं च्या वेव्हारें।
नये डोले धुरें भरूनि राहे॥

'तुका कहता है, इस लोकके व्यवहारसे आँखें धुएँसे भरी हुई न रखो।'

(५) षष्ठ स्कन्धमें अजामिलके कथा-प्रसङ्गमें कहा है—

न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करैः।

(२।४८)

तान्नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्॥

(३।२७)

इन दो चरणोंसे बिलकुल मिलता हुआ तुकारामजीका यह अभंग है—

यम सांगे दूतां। तुम्हां नाहीं तेथें सत्ता॥
जेथें होय हरिकथा। सदा घोष नामाचा॥ १॥
नका जाऊँ तया गांवां। नामधारका च्या शिवा॥
सुदर्शन यावा। घरटी फिरे भोंवती॥ ध्रु०॥
चक्र गदा घेऊनी हरी। उभा असे त्यांचे द्वारीं॥

'यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं कि जहाँ हरि-कथा होती है, नाम-संकीर्तन होता है वहाँ घुसनेका तुमलोगोंको कोई अधिकार नहीं है। नामधारकोंके मङ्गलग्राममें तुमलोग मत जाओ, वहाँ प्रत्येक गृहपर सुदर्शनचक्र घूमता रहता है, प्रत्येक द्वारपर श्रीहरि चक्र और गदा लिये खड़े रहते हैं।'

(६) **मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौज-**
स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः।

नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय॥
(७।९।९)

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥
(७।९।१०)

परम भक्त प्रह्लाद कहते हैं—धन, अभिजन, रूप, तप, पाण्डित्य (श्रुत), ओज, तेज, प्रताप, बल, पौरुष, प्रज्ञा और अष्टाङ्गयोग—ये गुण भगवान्‌की प्रसन्नताके कारण नहीं होते। गजेन्द्र पशु था और उसमें इन गुणोंमेंसे एक भी गुण नहीं था। भगवान् केवल उसकी भक्ति पाकर प्रसन्न हुए।' (अब दूसरे श्लोकमें यही बतलाते हैं कि भक्तिके सिवा भगवान् और कुछ नहीं चाहते—) 'उपर्युक्त बारहों गुण यदि किसी ब्राह्मणमें हैं पर वह कमलनाभभगवान्‌की सेवासे विमुख है तो उसकी अपेक्षा वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जिसने अपना मन, वचन, कर्म, अर्थ और प्राण भगवान्‌को समर्पित कर दिया है। कारण, हरि-भक्त चाण्डाल भी अपने कुलको पावन करता है, पर गर्वका पुतला बना हुआ नास्तिक ब्राह्मण अपना भी उद्धार नहीं कर सकता। ये दोनों श्लोक तुकारामजीके दो अभङ्गोंमें भावरूपसे आ गये हैं—

नव्हती ते संत करितां कवित्व ।=पांडित्य
संताचे ते आप्त नव्हती संत ॥ १ ॥=अभिजन
नव्हती ते संत वेदाच्या पठणें ।=श्रुत
नव्हती ते संत करितां तपतीर्थाटण ॥=तप इ० इ०

'संत वे नहीं जो कवित्व करते हैं, जिनका बड़ा परिवार है, जो वेदपाठ या तप-तीर्थाटन आदि करते हैं।'

अब दूसरा अभंग देखिये—

अभक्त ब्राह्मण जळो त्याचे तोंड । काय त्यासी रांड प्रसवली ॥ १ ॥
वैष्णव चांभार धन्य त्याची माता । शुद्ध उभयतां कुळ याती ॥ध्रु० ॥

ऐसा हा निवाडा जाळासे पुराणी। नव्हे माझी वाणीं पदरिची॥ २॥
तुका म्हणे आगी लागो थोरपणा। दृष्टित्या दुर्जना न पडो माझी॥ ३॥

'जो ब्राह्मण होकर भी भगवान्‌का भक्त न हो उसका मुँह काला! उसे मानो रांडने जना हो। चमार है पर यदि वह वैष्णव है तो उसकी माता धन्य है जिसने उसे जन्म देकर उभय कुल पावन किये। पुराणोंमें ही यह निर्णय हो चुका है, यह मैं कुछ अपने पल्लेसे नहीं कह रहा हूँ। तुका कहता है, उस बड़प्पनमें आग लगे (जिसमें भगवद्भक्ति नहीं); उसपर मेरी दृष्टि भी न पड़े।'

इस अभंगमें उपर्युक्त दूसरे श्लोकका अर्थ स्पष्ट ही प्रतिफलित हुआ है और साथ ही तुकारामजी यह भी बतला देते हैं कि 'यह निर्णय पुराणोंमें ही हो चुका है।' किस पुराणमें कहाँ यह निर्णय हुआ है यह बतलानेकी अब कोई आवश्यकता न रही। भागवत-पुराणके उपर्युक्त श्लोकमें यह निर्णय किया हुआ सामने मौजूद है।

(७) प्रह्लाद दैत्यपुत्रोंको उपदेश करते हुए कहते हैं (स्कन्ध ७—६)—

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः।
निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः॥ ६॥
मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः। इत्यादि।

तुकाराम 'गातों वासुदेव' अभंगमें कहते हैं—

अल्प आयुष्य मानवी देह। शत गणिलें तें अर्ध रात्र खाय।
पुढें बालत्व पीड़ा रोग क्षय। इत्यादि

मानवी देहकी आयु अल्प है। १०० वर्षकी आयु गिनें तो आधी आयु तो रात ही खा जाती है। फिर बाल्यकालमें कुछ आयु निकल जाती है। शेष पीड़ा, रोग और क्षय चट कर जाते हैं।

(८) अष्टम स्कन्ध (अ० २-३) में गजेन्द्रका आख्यान है, उसके साथ तुकारामजीके गजेन्द्रसम्बन्धी उल्लेख मिलाकर देखनेयोग्य हैं। गजेन्द्रकी कथा और उसका मर्म तुकारामजी बतलाते हैं—

गजेंद्र तो हत्ती सहस्र वरुषे। जळामाजी नक्रें पिडीलासें॥ १॥
सुहृदीं सांडिलें कोणी नाहीं साहे। अंतीं वाट पाहे विठो तुझी॥ २॥

कृपेच्या सागरा माझ्या नारायणा । तया दोघाजणां तारियेलें ॥ ३ ॥
तुकाम्हणे नेलें वाहनि विमानीं । मीही आइकोनी विश्वासलों ॥ ४ ॥

'गजेन्द्रको जलमें एक सहस्र वर्षसे ग्राहने पकड़ रखा था। गजेन्द्रके कोई सुहृद् उसे छुड़ा नहीं सके। तब अन्तमें हे विट्ठलनाथ! वह आपकी प्रतीक्षा करने लगा। हे कृपानिधान मेरे नारायण! उन दोनोंका आपने उद्धार किया। आप उन्हें विमानमें बैठाकर ले गये। यह सुनकर मुझे भी यह भरोसा हो गया।'

एक हजार वर्षतक गज-ग्राहका युद्ध हुआ यह बात भागवतमें भी है—**'तयोर्नियुद्ध्यतोः समाः सहस्रं व्यगमन्।'** कोई सुहृद छुड़ा नहीं सके—**'अपरे गजास्तं तारयितुं न चाशकन्।'** गजेन्द्र और ग्राह दोनोंको भगवान्ने तारा, यह बात भागवतमें ही कही है। विमानमें बैठा ले जानेकी बात भागवतमें इस रूपमें है—**'तेन युक्तः अद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात्।'** इस प्रकार तुकारामजीने भागवतकी जिन-जिन भक्तकथाओंका उल्लेख अपने अभंगोंमें किया है, उन कथाओंको उल्लेख करनेके पूर्व मूल भागवतमें अच्छी तरह देख लिया है। अर्थात् भागवतके साथ तुकारामजीका प्रत्यक्ष और दृढ़ परिचय था, यह स्पष्ट है।

तुकारामजीकी यह बात भी विशेष मनन करनेयोग्य है कि 'भगवान् उन्हें विमानमें बैठाकर ले गये। यह सुनकर मुझे भी यह भरोसा हो गया।' भगवान् भक्तको विमानमें बैठाकर अपने धाम ले जाते हैं, यह गजेन्द्र-अम्बरीष आदि भक्तोंके चरित्रोंमें देखा और इसका 'मुझे भी भरोसा हो गया।' तुकारामजीका यह उद्गार उन्हींकी वैकुण्ठ-गमनकी कथाके साथ मिलाकर देखनेयोग्य है।

(९) **तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्**
सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत्॥

(८।९।२९)

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम्।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि॥

(८।५।४९)

श्रीमद्भागवतमें मूलसेचनका दो बार आया हुआ यह दृष्टान्त इसी अर्थके साथ तुकारामजीके अभंगमें भी इस प्रकार आया है—

ऐसा हा निवाडा जाळासे पुराणी। नव्हे माझी वाणीं पदरिची॥ २॥
तुका म्हणे आगी लागो थोरपणा। दृष्टित्या दुर्जना न पडो माझी॥ ३॥

'जो ब्राह्मण होकर भी भगवान्‌का भक्त न हो उसका मुँह काला! उसे मानो रांडने जना हो। चमार है पर यदि वह वैष्णव है तो उसकी माता धन्य है जिसने उसे जन्म देकर उभय कुल पावन किये। पुराणोंमें ही यह निर्णय हो चुका है, यह मैं कुछ अपने पल्लेसे नहीं कह रहा हूँ। तुका कहता है, उस बड़प्पनमें आग लगे (जिसमें भगवद्भक्ति नहीं); उसपर मेरी दृष्टि भी न पड़े।'

इस अभंगमें उपर्युक्त दूसरे श्लोकका अर्थ स्पष्ट ही प्रतिफलित हुआ है और साथ ही तुकारामजी यह भी बतला देते हैं कि 'यह निर्णय पुराणोंमें ही हो चुका है।' किस पुराणमें कहाँ यह निर्णय हुआ है यह बतलानेकी अब कोई आवश्यकता न रही। भागवत-पुराणके उपर्युक्त श्लोकमें यह निर्णय किया हुआ सामने मौजूद है।

(७) प्रह्लाद दैत्यपुत्रोंको उपदेश करते हुए कहते हैं (स्कन्ध ७—६)—

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः।
निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः॥ ६॥
मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः। इत्यादि।

तुकाराम 'गातों वासुदेव' अभंगमें कहते हैं—

अल्प आयुष्य मानवी देह। शत गणिलें तें अर्ध रात्र खाय।
पुढें बालत्व पीड़ा रोग क्षय। इत्यादि

मानवी देहकी आयु अल्प है। १०० वर्षकी आयु गिनें तो आधी आयु तो रात ही खा जाती है। फिर बाल्यकालमें कुछ आयु निकल जाती है। शेष पीड़ा, रोग और क्षय चट कर जाते हैं।

(८) अष्टम स्कन्ध (अ० २-३) में गजेन्द्रका आख्यान है, उसके साथ तुकारामजीके गजेन्द्रसम्बन्धी उल्लेख मिलाकर देखनेयोग्य हैं। गजेन्द्रकी कथा और उसका मर्म तुकारामजी बतलाते हैं—

गजेंद्र तो हत्ती सहस्र वरुषे। जळामाजी नक्रें पिडीलासें॥ १॥
सुहृदीं सांडिलें कोणी नाहीं साहे। अंतीं वाट पाहे विठो तुझी॥ २॥

कृपेच्या सागरा माझ्या नारायणा । तया दोघाजणां तारियेलें ॥ ३ ॥
तुकाम्हणे नेलें वाहनि विमानीं । मीही आइकोनी विश्वासलों ॥ ४ ॥

'गजेन्द्रको जलमें एक सहस्र वर्षसे ग्राहने पकड़ रखा था। गजेन्द्रके कोई सुहृद् उसे छुड़ा नहीं सके। तब अन्तमें हे विट्ठलनाथ! वह आपकी प्रतीक्षा करने लगा। हे कृपानिधान मेरे नारायण! उन दोनोंका आपने उद्धार किया। आप उन्हें विमानमें बैठाकर ले गये। यह सुनकर मुझे भी यह भरोसा हो गया।'

एक हजार वर्षतक गज-ग्राहका युद्ध हुआ यह बात भागवतमें भी है—'**तयोर्नियुद्ध्यतोः समाः सहस्रं व्यगमन्।**' कोई सुहृद छुड़ा नहीं सके—'**अपरे गजास्तं तारयितुं न चाशकन्।**' गजेन्द्र और ग्राह दोनोंको भगवान्ने तारा, यह बात भागवतमें ही कही है। विमानमें बैठा ले जानेकी बात भागवतमें इस रूपमें है—'**तेन युक्तः अद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात्।**' इस प्रकार तुकारामजीने भागवतकी जिन-जिन भक्तकथाओंका उल्लेख अपने अभंगोंमें किया है, उन कथाओंको उल्लेख करनेके पूर्व मूल भागवतमें अच्छी तरह देख लिया है। अर्थात् भागवतके साथ तुकारामजीका प्रत्यक्ष और दृढ़ परिचय था, यह स्पष्ट है।

तुकारामजीकी यह बात भी विशेष मनन करनेयोग्य है कि 'भगवान् उन्हें विमानमें बैठाकर ले गये। यह सुनकर मुझे भी यह भरोसा हो गया।' भगवान् भक्तको विमानमें बैठाकर अपने धाम ले जाते हैं, यह गजेन्द्र-अम्बरीष आदि भक्तोंके चरित्रोंमें देखा और इसका 'मुझे भी भरोसा हो गया।' तुकारामजीका यह उद्गार उन्हींकी वैकुण्ठ-गमनकी कथाके साथ मिलाकर देखनेयोग्य है।

(९) **तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्**
सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत्॥

(८।९।२९)

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम्।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि॥

(८।५।४९)

श्रीमद्भागवतमें मूलसेचनका दो बार आया हुआ यह दृष्टान्त इसी अर्थके साथ तुकारामजीके अभंगमें भी इस प्रकार आया है—

सिंचन करितां मूळ ॥ वृक्ष ओलावे सकळ ॥ १ ॥
नको पृथकाचे भरीं ॥ पडो एक सार धरी ॥ २ ॥

'मूलका सिञ्चन करनेसे उसकी तरी समस्त वृक्षमें पहुँचती है। पृथक्‌के फेरमें मत पड़ो, जो सार वस्तु है उसे पकड़े रहो।' ज्ञानेश्वरीमें भी यही दृष्टान्त आया है—'मूलसिञ्चनसे जैसे सहज ही शाखा-पल्लव सन्तोषको प्राप्त होते हैं' परन्तु '**अपृथक्त्वात्**' पद भागवत्‌में ही है और उसीसे पृथक्‌के फेरमें मत पड़ो, यह तुकोक्ति निकली है।

(१०) **अहं भक्तपराधीनः** (९।४।६३)

अरे भक्तपराधीना। तुका म्हणे नारायणा ॥ १ ॥

(११) **वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥**

(९।४।६६)

पतिव्रते जैसा भ्रतार प्रमाण। आम्हा नारायण तैशापरी।

'पतिव्रताके लिये जैसे पति ही प्रमाण है, वैसे ही हमारे लिये नारायण हैं!'

(१२) **भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥**

(१०।२२।२६)

बीज भाजुनि केली लाही। आम्हां जन्म-मरण नाहीं ॥

'बीज भूँजकर लाई बना डाली, तब जन्म-मरण कहाँ रहा?'

(१३) एकादश स्कन्धके दूसरे अध्यायमें '**कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा**', (३६) इस श्लोकसे लेकर '**विसृजति हृदयं न यस्य साक्षात्... प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः**' (५५) इस श्लोकतक भागवत-धर्मका वर्णन है। इसमें आद्य और अन्त्य दोनों पदोंका अर्थ तुकारामजीके अभंगमें है—

प्रेमसूत्रदोरी । नेतो तिकडे जातो हरी ॥ १ ॥
मने सहित वाचा काया। अवधें दिलें पंढरिराया ॥ २ ॥
(प्रेमसूत्रडोर । जाते हरि खींचो जिस ओर ॥
मन सह तन बचन। किया सब हरि-अर्पण ॥)

प्रणयरशना—प्रेमसूत्रकी डोर।

(१४) भागवतके निम्नलिखित श्लोकका तो तुकारामजीने पदशः भाषान्तर किया है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

यह श्लोक एकादश स्कन्ध (अ० १४।१४) में है। कुछ हेर-फेरके साथ ऐसा ही श्लोक षष्ठ स्कन्धमें भी है (अ० ११। २५) इस श्लोकका अर्थ यह है कि जिसने मुझे आत्मार्पण किया है वह मेरा भक्त मेरे सिवा और कुछ भी नहीं चाहता। पारमेष्ठ्य अर्थात् परमेष्ठीपद अथवा सत्यलोक, महेन्द्रधिष्ण्य अर्थात् इन्द्रपद, सार्वभौमपद, रसाधिपत्य अर्थात् पातालका आधिपत्य, योगसिद्धि, अपुनर्भव अर्थात् मोक्षकी भी वह इच्छा नहीं करता। इन पारमेष्ठ्यादि छः पदोंको सामने रखकर, तुकारामजीने देखिये, कैसे इस श्लोकका अनुवाद किया है—

परमेष्ठीपदा। तुच्छ करीती सर्वदा॥ १॥
'परमेष्ठी पदको भी सदा तुच्छ समझते हैं। (कौन ?)
हेंचि ज्याचें धन। सदा हरीचें चिंतन॥ ध्रुव०॥
'सदा हरिका चिन्तन ही जिनका धन है।'
इंद्रादिक भोग। भगनव्हे तो भवरोग॥ २॥
'इन्द्रादिकोंके जो भोग हैं वे भोग नहीं, भवरोग हैं।'
सार्वभौम राज्य। त्यांसी कांही नाहीं काज॥ ३॥
'सार्वभौम राज्यसे उन्हें कोई काम नहीं है।'
पाताळीचें आधिपत्य। ते तो मानिती विपत्य॥ ४॥
'पातालके अधिपति होनेको वे विपत्ति ही समझते हैं।'
योगसिद्धिसार। त्यांसी वाटे तें असार॥ ५॥
'योगसिद्धियोंके सारको वे निःसार समझते हैं।'
मोक्षायेवढ़ें सुख। सुख नव्हे तेंचि दुःख॥ ६॥
'मोक्षतकके सुखको वे सुख नहीं, दुःख ही समझते हैं।'
तुका म्हणे हरी वीण। त्यांसी अववा वाटे शीण॥ ७॥
'तुका कहता है, हरिके बिना वे सब कुछ व्यर्थ समझते हैं।'

इतने स्पष्ट प्रमाण पानेके पश्चात् कोई भी यह नहीं कह सकता कि श्रीमद्भागवतके साथ तुकारामजीका दृढ़ परिचय नहीं था।

सिंचन करितां मूळ ॥ वृक्ष ओलावे सकळ ॥ १ ॥
नको पृथकाचे भरीं ॥ पडो एक सार धरी ॥ २ ॥

'मूलका सिञ्चन करनेसे उसकी तरी समस्त वृक्षमें पहुँचती है। पृथक्‌के फेरमें मत पड़ो, जो सार वस्तु है उसे पकड़े रहो।' ज्ञानेश्वरीमें भी यही दृष्टान्त आया है—'मूलसिञ्चनसे जैसे सहज ही शाखा-पल्लव सन्तोषको प्राप्त होते हैं' परन्तु '**अपृथक्त्वात्**' पद भागवत्‌में ही है और उसीसे पृथक्‌के फेरमें मत पड़ो, यह तुकोक्ति निकली है।

(१०) **अहं भक्तपराधीनः** (९।४।६३)

अरे भक्तपराधीना। तुका म्हणे नारायणा ॥ १ ॥

(११) **वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥**

(९।४।६६)

पतिव्रते जैसा भ्रतार प्रमाण। आम्हा नारायण तैशापरी।

'पतिव्रताके लिये जैसे पति ही प्रमाण है, वैसे ही हमारे लिये नारायण हैं!'

(१२) **भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥**

(१०।२२।२६)

बीज भाजुनि केली लाही। आम्हां जन्म-मरण नाहीं ॥

'बीज भूँजकर लाई बना डाली, तब जन्म-मरण कहाँ रहा?'

(१३) एकादश स्कन्धके दूसरे अध्यायमें '**कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा**', (३६) इस श्लोकसे लेकर '**विसृजति हृदयं न यस्य साक्षात्... प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः**' (५५) इस श्लोकतक भागवत-धर्मका वर्णन है। इसमें आद्य और अन्त्य दोनों पदोंका अर्थ तुकारामजीके अभंगमें है—

प्रेमसूत्रदोरी । नेतो तिकडे जातो हरी ॥ १ ॥
मने सहित वाचा काया। अवधें दिलें पंढरिराया ॥ २ ॥
(प्रेमसूत्रडोर । जाते हरि खींचो जिस ओर ॥
मन सह तन बचन। किया सब हरि-अर्पण ॥)

प्रणयरशना—प्रेमसूत्रकी डोर।

(१४) भागवतके निम्नलिखित श्लोकका तो तुकारामजीने पदशः भाषान्तर किया है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

यह श्लोक एकादश स्कन्ध (अ० १४।१४) में है। कुछ हेर-फेरके साथ ऐसा ही श्लोक षष्ठ स्कन्धमें भी है (अ० ११। २५) इस श्लोकका अर्थ यह है कि जिसने मुझे आत्मार्पण किया है वह मेरा भक्त मेरे सिवा और कुछ भी नहीं चाहता। पारमेष्ठ्य अर्थात् परमेष्ठीपद अथवा सत्यलोक, महेन्द्रधिष्ण्य अर्थात् इन्द्रपद, सार्वभौमपद, रसाधिपत्य अर्थात् पातालका आधिपत्य, योगसिद्धि, अपुनर्भव अर्थात् मोक्षकी भी वह इच्छा नहीं करता। इन पारमेष्ठ्यादि छः पदोंको सामने रखकर, तुकारामजीने देखिये, कैसे इस श्लोकका अनुवाद किया है—

परमेष्ठीपदा। तुच्छ करीती सर्वदा ॥ १ ॥
'परमेष्ठी पदको भी सदा तुच्छ समझते हैं। (कौन ?)
हेंचि ज्याचें धन। सदा हरीचें चिंतन ॥ ध्रुव० ॥
'सदा हरिका चिन्तन ही जिनका धन है।'
इंद्रादिक भोग। भगनव्हे तो भवरोग ॥ २ ॥
'इन्द्रादिकोंके जो भोग हैं वे भोग नहीं, भवरोग हैं।'
सार्वभौम राज्य। त्यांसी कांही नाहीं काज ॥ ३ ॥
'सार्वभौम राज्यसे उन्हें कोई काम नहीं है।'
पाताळीचें आधिपत्य। ते तो मानिती विपत्य ॥ ४ ॥
'पातालके अधिपति होनेको वे विपत्ति ही समझते हैं।'
योगसिद्धिसार। त्यांसी वाटे तें असार ॥ ५ ॥
'योगसिद्धियोंके सारको वे निःसार समझते हैं।'
मोक्षायेवढ़ें सुख। सुख नव्हे तेंचि दुःख ॥ ६ ॥
'मोक्षतकके सुखको वे सुख नहीं, दुःख ही समझते हैं।'
तुका म्हणे हरी वीण। त्यांसी अववा वाटे शीण ॥ ७ ॥
'तुका कहता है, हरिके बिना वे सब कुछ व्यर्थ समझते हैं।'

इतने स्पष्ट प्रमाण पानेके पश्चात् कोई भी यह नहीं कह सकता कि श्रीमद्भागवतके साथ तुकारामजीका दृढ़ परिचय नहीं था।

१०-पुराणोंपर श्रद्धा

भागवतके अतिरिक्त अन्य पुराणोंको भी तुकारामजीने बड़े प्रेमसे पढ़ा था। पुराणोंके सम्बन्धमें उन्होंने अनेक बार जो प्रेमोद्‌गार प्रकट किये हैं उनसे यह मालूम होता है कि पुराणोंका भी उनके चित्तपर गहरा प्रभाव पड़ा था।

एक स्थानमें उन्होंने कहा है, 'मैंने पुराण देखे, दर्शनोंमें भी ढूँढ़-खोज की, पर तीनों भुवनमें ऐसा (मेरे नारायण-जैसा) कोई दूसरा न देखा।' एक दूसरे स्थानमें कहते हैं, 'पुराणोंका इतिहास देखा, उसके मीठे रसका सेवन किया और उसीके आधारपर यह कविता कर रहा हूँ, यह व्यर्थका प्रलाप नहीं है।' एक स्थानमें तुकाराम भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि 'हे भगवन्! मैं यहाँ (इन चरणोंमें) अनन्य अधिकारी कब, कैसे बन सकूँगा, यह मैं नहीं जानता। पुराणोंके अर्थोंका जब ध्यान करता हूँ तो जी तड़पने लगता है।' 'भक्तिके बिना भगवान् नहीं मिलनेके', तुकाराम कहते हैं कि 'यही बात पुराण बतलाते हैं। पुराणोंमें यह प्रसिद्ध है कि असंख्य भक्तोंको भगवान्‌ने उबारा है, पुराण बतलाते हैं कि भगवान् ऐसे दयालु हैं। पुराणोंके वचन मेरे लिये प्रमाण हैं।'

इस प्रकार अनेक स्थानोंमें तुकारामजीने अपना पुराण-प्रेम व्यक्त किया है। पुराणोंकी भक्त-कथाएँ पढ़कर तुकाराम तन्मय हो जाते थे, इनकी-सी उत्कट भगवद्भक्ति मेरे चित्तमें कब उदय होगी, यही सोच उनको होता था और वह व्याकुल हो उठते थे। पुराणोंका अमृतरस पान करते हुए वह प्रेमाश्रुओंसे भीग जाते थे। ध्रुवकी ध्याननिष्ठा देखकर वह श्रीविट्ठलरूपके ध्यानमें निमग्न हो जाते थे। नाम-स्मरणसे कितने असंख्य भक्त तर गये, यह सोचकर वह और भी अधिक उल्लासके साथ नाम-कीर्तनमें निमज्जित हो जाते थे। श्रीमद्भागवतादि पुराणोंके समवलोकनका ऐसा मृदु और मधुर सुसंस्कार तुकारामजीके शुद्ध चित्तपर पड़ा। '**नामाचें पवाडे गर्जती पुराणें**' (पुराण गरजकर नामके गीत गाते हैं) वाले अभंगमें तुकारामजीने यह कहा है कि आदिनाथ शङ्कर, नारद, परीक्षित्, वाल्मीकि आदि नामके अलौकिक रागमें तन्मय हो गये और हम-जैसोंको मार्ग दिखा गये। अस्तु, यहाँतक हमलोगोंने यह देखा कि गीता तथा भागवतादि पुराणोंका अध्ययन तुकारामजीके ज्ञानार्जनका कितना बड़ा अङ्ग था।

११-विष्णुसहस्रनाम-पाठ

भागवतधर्मियोंमें विष्णुसहस्रनाम भी पहलेसे ही बहुत प्रिय और मान्य है। इसके नित्य पाठकी परम्परा भी बहुत प्राचीन है। यह विष्णुसहस्रनाम महाभारतके अनुशासनपर्वका ४९ वाँ अध्याय है। भगवान्‌का ध्यानपूर्वक नाम-सङ्कीर्तन चित्तशुद्धिका उत्तम उपाय है। नाम-स्मरण वेदोंमें भी विहित है। ऋग्वेदके अन्तिम अध्यायमें यह वचन है—'**मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदसः०**' श्रीमद्भागवतमें तो अनेक स्थानों, विशेषकर अजामिलकी कथाके प्रसङ्गसे (स्कन्ध ६ अ० २) नाम-माहात्म्य बड़े प्रेमसे गाया गया है। नाम-स्मरणके लिये विष्णुसहस्रनाम बड़ा अच्छा साधन है। ज्ञानेश्वरीमें (अ० १२। ९०) ज्ञानेश्वर महाराजने यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि 'सहस्रों नामोंकी नौकाओंके रूपमें सजकर मैं संसारके पार पहुँचनेवाला तारक जहाज बना हूँ।' नामदेवरायके अभंगोंमें भी 'सहस्रनामके बटोहियोंको कन्धेपर चढ़ा लिया' ऐसा उल्लेख है। गीता और विष्णुसहस्रनामके नित्यपाठकी परिपाटी बहुत प्राचीन है। नाम-स्मरण भवसागर पार करनेका मुख्य साधन है, यह भागवत-धर्मका मुख्य उपदेश है। भागवतमें सहस्रशः यह उपदेश किया गया है। गीतामें भी '**सततं कीर्तयन्तो माम्**' (अ० ९। १४), '**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**' (अ० १०। २५), '**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म**' (अ० ८। १३) इत्यादि प्रकारसे नाम-स्मरणका निर्देश किया गया है। विष्णुसहस्रनाममाला नाम-स्मरणके लिये बनी-बनायी चीज मिल गयी, इससे लोग उसका उपयोग करने लगे और उसका इतना प्रचार हुआ। तुकारामजी भी विष्णुसहस्रनामका नित्य पाठ किया करते थे। वारकरी सम्प्रदायमें यह बात प्रसिद्ध है कि तुकारामजीने विष्णुसहस्रनामके एक लक्ष पाठ किये। तुकारामजीके अभंगोंमें ७-८ बार विष्णुसहस्रनामका नाम आया है—

(१) सहस्रनामकी नौकाको ठीक कर लो जो भवसागरके पार करा देती है।

(२) षट्शास्त्र, चार वेद, अठारह पुराणोंकी एकीभूत प्रतिमास्वरूप इस श्यामरूपको आँखोंमें भर लो और विष्णुसहस्रनाममन्त्र-माला फेरो।

(३) सहस्रनामकी प्रत्येक पुकार उत्तरोत्तर अधिकाधिक बल देनेवाली है।

१०-पुराणोंपर श्रद्धा

भागवतके अतिरिक्त अन्य पुराणोंको भी तुकारामजीने बड़े प्रेमसे पढ़ा था। पुराणोंके सम्बन्धमें उन्होंने अनेक बार जो प्रेमोद्‌गार प्रकट किये हैं उनसे यह मालूम होता है कि पुराणोंका भी उनके चित्तपर गहरा प्रभाव पड़ा था।

एक स्थानमें उन्होंने कहा है, 'मैंने पुराण देखे, दर्शनोंमें भी ढूँढ़-खोज की, पर तीनों भुवनमें ऐसा (मेरे नारायण-जैसा) कोई दूसरा न देखा।' एक दूसरे स्थानमें कहते हैं, 'पुराणोंका इतिहास देखा, उसके मीठे रसका सेवन किया और उसीके आधारपर यह कविता कर रहा हूँ, यह व्यर्थका प्रलाप नहीं है।' एक स्थानमें तुकाराम भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि 'हे भगवन्! मैं यहाँ (इन चरणोंमें) अनन्य अधिकारी कब, कैसे बन सकूँगा, यह मैं नहीं जानता। पुराणोंके अर्थोंका जब ध्यान करता हूँ तो जी तड़पने लगता है।' 'भक्तिके बिना भगवान् नहीं मिलनेके', तुकाराम कहते हैं कि 'यही बात पुराण बतलाते हैं। पुराणोंमें यह प्रसिद्ध है कि असंख्य भक्तोंको भगवान्‌ने उबारा है, पुराण बतलाते हैं कि भगवान् ऐसे दयालु हैं। पुराणोंके वचन मेरे लिये प्रमाण हैं।'

इस प्रकार अनेक स्थानोंमें तुकारामजीने अपना पुराण-प्रेम व्यक्त किया है। पुराणोंकी भक्त-कथाएँ पढ़कर तुकाराम तन्मय हो जाते थे, इनकी-सी उत्कट भगवद्भक्ति मेरे चित्तमें कब उदय होगी, यही सोच उनको होता था और वह व्याकुल हो उठते थे। पुराणोंका अमृतरस पान करते हुए वह प्रेमाश्रुओंसे भीग जाते थे। ध्रुवकी ध्याननिष्ठा देखकर वह श्रीविट्ठलरूपके ध्यानमें निमग्न हो जाते थे। नाम-स्मरणसे कितने असंख्य भक्त तर गये, यह सोचकर वह और भी अधिक उल्लासके साथ नाम-कीर्तनमें निमज्जित हो जाते थे। श्रीमद्भागवतादि पुराणोंके समवलोकनका ऐसा मृदु और मधुर सुसंस्कार तुकारामजीके शुद्ध चित्तपर पड़ा। '**नामाचें पवाडे गर्जती पुराणें**' (पुराण गरजकर नामके गीत गाते हैं) वाले अभंगमें तुकारामजीने यह कहा है कि आदिनाथ शङ्कर, नारद, परीक्षित्, वाल्मीकि आदि नामके अलौकिक रागमें तन्मय हो गये और हम-जैसोंको मार्ग दिखा गये। अस्तु, यहाँतक हमलोगोंने यह देखा कि गीता तथा भागवतादि पुराणोंका अध्ययन तुकारामजीके ज्ञानार्जनका कितना बड़ा अङ्ग था।

११-विष्णुसहस्रनाम-पाठ

भागवतधर्मियोंमें विष्णुसहस्रनाम भी पहलेसे ही बहुत प्रिय और मान्य है। इसके नित्य पाठकी परम्परा भी बहुत प्राचीन है। यह विष्णुसहस्रनाम महाभारतके अनुशासनपर्वका ४९ वाँ अध्याय है। भगवान्‌का ध्यानपूर्वक नाम-सङ्कीर्तन चित्तशुद्धिका उत्तम उपाय है। नाम-स्मरण वेदोंमें भी विहित है। ऋग्वेदके अन्तिम अध्यायमें यह वचन है—'**मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदसः०**' श्रीमद्भागवतमें तो अनेक स्थानों, विशेषकर अजामिलकी कथाके प्रसङ्गसे (स्कन्ध ६ अ० २) नाम-माहात्म्य बड़े प्रेमसे गाया गया है। नाम-स्मरणके लिये विष्णुसहस्रनाम बड़ा अच्छा साधन है। ज्ञानेश्वरीमें (अ० १२। ९०) ज्ञानेश्वर महाराजने यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि 'सहस्रों नामोंकी नौकाओंके रूपमें सजकर मैं संसारके पार पहुँचनेवाला तारक जहाज बना हूँ।' नामदेवरायके अभंगोंमें भी 'सहस्रनामके बटोहियोंको कन्धेपर चढ़ा लिया' ऐसा उल्लेख है। गीता और विष्णुसहस्रनामके नित्यपाठकी परिपाटी बहुत प्राचीन है। नाम-स्मरण भवसागर पार करनेका मुख्य साधन है, यह भागवत-धर्मका मुख्य उपदेश है। भागवतमें सहस्रशः यह उपदेश किया गया है। गीतामें भी '**सततं कीर्तयन्तो माम्**' (अ० ९। १४), '**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**' (अ० १०। २५), '**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म**' (अ० ८। १३) इत्यादि प्रकारसे नाम-स्मरणका निर्देश किया गया है। विष्णुसहस्रनाममाला नाम-स्मरणके लिये बनी-बनायी चीज मिल गयी, इससे लोग उसका उपयोग करने लगे और उसका इतना प्रचार हुआ। तुकारामजी भी विष्णुसहस्रनामका नित्य पाठ किया करते थे। वारकरी सम्प्रदायमें यह बात प्रसिद्ध है कि तुकारामजीने विष्णुसहस्रनामके एक लक्ष पाठ किये। तुकारामजीके अभंगोंमें ७-८ बार विष्णुसहस्रनामका नाम आया है—

(१) सहस्रनामकी नौकाको ठीक कर लो जो भवसागरके पार करा देती है।

(२) षट्शास्त्र, चार वेद, अठारह पुराणोंकी एकीभूत प्रतिमास्वरूप इस श्यामरूपको आँखोंमें भर लो और विष्णुसहस्रनाममन्त्र-माला फेरो।

(३) सहस्रनामकी प्रत्येक पुकार उत्तरोत्तर अधिकाधिक बल देनेवाली है।

(४) सहस्रनामका रूप भक्तोंका पक्षपाती है।

(५) मेरी पूँजी सहस्रनाममाला है।

(६) एक नाम भी जहाँ असीम है वहाँ सहस्र नामोंकी माला गूँथ डाली।

(७) जिसके रूप है न आकार, वह नाना अवतार धारण करता है, उसीने अपने सहस्रनाम रख लिये।

(८) सहस्रनामसे पूजा करना कलश ही चढ़ाना है।

तुकारामजीका यह कहना है कि विष्णुसहस्रनाम नौकाका मैंने सहारा लिया, आपलोग भी लीजिये; इससे भव-सिन्धुको पार कर जाओगे। इस सहस्रनामावलिमें श्रीकृष्णके जो केशव, पुरुषोत्तम, गोविन्द, माधव, अच्युत, देवकीनन्दन, वासुदेव, गरुडध्वज, नारायण, दामोदर, मुकुन्द, हरि, भक्तवत्सल, पापनाशन आदि नाम हैं—ये ही तुकारामजीके अभंगोंमें बार-बार आते हैं। कई नामोंपर उन्हें अभंग भी सूझे हैं—

(१) **धर्मो धर्मविदुत्तमः।**

धर्माची तूं मूर्ति। पाप-पुण्य तुझे हातीं॥ १॥

'धर्मकी तुम मूर्ति हो। पाप-पुण्य तुम्हारे हाथमें है।'

(२) **गुप्तश्चक्रगदाधरः।**

घेऊनियां चक्रगदां। हाची धन्दा करीतो॥ १॥
भक्तां राखे पायांपाशी। दुर्जनांसी संहारी॥ २॥

'चक्र और गदा लिये वह यही किया करता है कि भक्तोंको अपने चरणोंके पास रखता और दुर्जनोंका संहार करता है।'

'**चक्रगदाधरः**' पदका यह विवरण है। सुदर्शनचक्रसे वह अम्बरीष-जैसे भक्तोंको अपने चरणोंके समीप रखता और गदासे कंस-जैसे दुर्जनोंका संहार करता है।

(३) **अमृतांशोऽमृतवपुः।**

जीवाचें जीवन। अमृताची तनु। ब्रह्माण्डभूषण। नारायण॥ १॥

१२-महिम्नादि स्तोत्र और सुभाषित

तुकारामजीके अभंगोंमें संस्कृत श्लोकोंके प्रतिरूप या अनुवाद आ जाते हैं, जिनसे उनकी बहुश्रुतता और धारणा-शक्तिका पता लगता है—

(१)सर्वं विष्णुमयं जगत्। *विष्णुमय जगत वैष्णवांचा धर्म।*

(२) **मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥**

माझे भक्त गाती जेथें। नारद मी उभा तेथें॥ १॥

मेरे भक्त जहाँ गाते हैं, हे नारद! मैं वहाँ खड़ा रहता हूँ।

(३) **कामातुराणां न भयं न लज्जा।**

कामातुरा भय लाज ना विचार।

कामातुरको न भय है, न लज्जा, न विचार।

(४) **क्षमाशस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।**
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति॥

क्षमाशस्त्र जया नराचिये होतीं। दुष्ट तयाप्रति काय करी॥ १॥
तृण नाहीं तेथें पड़ला दावाग्री। जायतो बिझोनी आपसया॥ २॥

'क्षमा-शस्त्र जिस मनुष्यके हाथमें है, दुष्टजन उसका क्या बिगाड़ सकते हैं? जहाँ तृण ही नहीं है वहाँ दावाग्नि सुलगकर क्या करेगी? आप ही बुझ जायगी।'

(५) **मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।**

उलंघितें पांगुळ गिरी। मुकें करी अनुवाद।

(६) **प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा गौरवं न तु रौरवम्।।**

मानदंभचेष्टा। हे तों सूकराची विष्ठा॥ १॥

(७) **परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥**

पुण्य परउपकार पाप ते परपीडा।
आणिक नाहीं जोडा दुजा यासी॥

'पुण्य परोपकार है और पाप परपीड़ा है। इसका और कोई जोड़ा नहीं है।

(८) **मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम्।**
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति॥

काय केलें चळचरीं। ढीवर त्याच्यां वातावरी॥ १॥
हातों ठायीचा विचार। आहे याति वैराकार॥ध्रु॥
श्वापदांते वधी। निरपराधें पारधी॥ २॥
तुका म्हणे खळ। संतां पीडिती चांडाळ॥ ३॥

(४) सहस्रनामका रूप भक्तोंका पक्षपाती है।

(५) मेरी पूँजी सहस्रनाममाला है।

(६) एक नाम भी जहाँ असीम है वहाँ सहस्र नामोंकी माला गूँथ डाली।

(७) जिसके रूप है न आकार, वह नाना अवतार धारण करता है, उसीने अपने सहस्रनाम रख लिये।

(८) सहस्रनामसे पूजा करना कलश ही चढ़ाना है।

तुकारामजीका यह कहना है कि विष्णुसहस्रनाम नौकाका मैंने सहारा लिया, आपलोग भी लीजिये; इससे भव-सिन्धुको पार कर जाओगे। इस सहस्रनामावलिमें श्रीकृष्णके जो केशव, पुरुषोत्तम, गोविन्द, माधव, अच्युत, देवकीनन्दन, वासुदेव, गरुडध्वज, नारायण, दामोदर, मुकुन्द, हरि, भक्तवत्सल, पापनाशन आदि नाम हैं—ये ही तुकारामजीके अभंगोंमें बार-बार आते हैं। कई नामोंपर उन्हें अभंग भी सूझे हैं—

(१) **धर्मो धर्मविदुत्तमः।**

धर्माची तूं मूर्ति। पाप-पुण्य तुझे हातीं॥ १॥

'धर्मकी तुम मूर्ति हो। पाप-पुण्य तुम्हारे हाथमें है।'

(२) **गुप्तश्चक्रगदाधरः।**

घेऊनियां चक्रगदां। हाची धन्दा करीतो॥ १॥
भक्तां राखे पायांपाशी। दुर्जनांसी संहारी॥ २॥

'चक्र और गदा लिये वह यही किया करता है कि भक्तोंको अपने चरणोंके पास रखता और दुर्जनोंका संहार करता है।'

'**चक्रगदाधरः**' पदका यह विवरण है। सुदर्शनचक्रसे वह अम्बरीष-जैसे भक्तोंको अपने चरणोंके समीप रखता और गदासे कंस-जैसे दुर्जनोंका संहार करता है।

(३) **अमृतांशोऽमृतवपुः।**

जीवाचें जीवन। अमृताची तनु। ब्रह्माण्डभूषण। नारायण॥ १॥

१२-महिम्नादि स्तोत्र और सुभाषित

तुकारामजीके अभंगोंमें संस्कृत श्लोकोंके प्रतिरूप या अनुवाद आ जाते हैं, जिनसे उनकी बहुश्रुतता और धारणा-शक्तिका पता लगता है—

(१)**सर्वं विष्णुमयं जगत्।** *विष्णुमय जगत वैष्णवांचा धर्म।*

(२) **मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥**

माझे भक्त गाती जेथें। नारद मी उभा तेथें॥ १॥

मेरे भक्त जहाँ गाते हैं, हे नारद! मैं वहाँ खड़ा रहता हूँ।

(३) **कामातुराणां न भयं न लज्जा।**

कामातुरा भय लाज ना विचार।

कामातुरको न भय है, न लज्जा, न विचार।

(४) **क्षमाशस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।**
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति॥

क्षमाशस्त्र जया नराचिये होतीं। दुष्ट तयाप्रति काय करी॥ १॥
तृण नाहीं तेथें पड़ला दावाग्री। जायतो बिझोनी आपसया॥ २॥

'क्षमा-शस्त्र जिस मनुष्यके हाथमें है, दुष्टजन उसका क्या बिगाड़ सकते हैं? जहाँ तृण ही नहीं है वहाँ दावाग्नि सुलगकर क्या करेगी? आप ही बुझ जायगी।'

(५) **मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।**

उलंघितें पांगुळ गिरी। मुकें करी अनुवाद।

(६) **प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा गौरवं न तु रौरवम्।।**

मानदंभचेष्टा। हे तों सूकराची विष्ठा॥ १॥

(७) **परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥**

पुण्य परउपकार पाप ते परपीडा।
आणिक नाहीं जोडा दुजा यासी॥

'पुण्य परोपकार है और पाप परपीड़ा है। इसका और कोई जोड़ा नहीं है।

(८) **मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम्।**
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति॥

काय केलें चळचरीं। ढीवर त्याच्यां वातावरी॥ १॥
हातों ठायीचा विचार। आहे याति वैराकार॥ध्रु॥
श्वापदांते वधी। निरपराधें पारधी॥ २॥
तुका म्हणे खळ। संतां पीडिती चांडाळ॥ ३॥

जलचर बेचारोंने क्या किया जो धीवर उनकी घातमें रहता है? पर यह ऐसा ही है; यह जातिस्वभाव है, इनकी देह ही इनके वैरकी है। (वैसे ही) व्याध निरपराध मृगोंको मारा करता है। (और) तुका कहता है, खल जो हैं चाण्डाल, वे सन्तोंको ही सताया करते हैं। लुब्धक, धीवर, पिशुन तीनों दृष्टान्त तुकारामजीने उठा लिये हैं और उन्हें अभंग वाणीमें क्या खूबीसे बैठाया है।

भर्तृहरिके नीतिवैराग्यशतक और आचार्यके पाण्डुरङ्गाष्टक, षट्पदी और महिम्नादि स्तोत्र तुकारामजीके अवलोकन और पाठमें रहे होंगे। पाण्डुरङ्गाष्टकमें इस आशयका एक श्लोक है कि भगवान्ने कटिपर जो हाथ रखे हैं वह यह जतलानेके लिये कि भक्तोंके लिये भवसागर कमरके नीचे ही है।

(९) **प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानां**
नितम्बः कराभ्यां धृतो येन तस्मात्।
विधातुर्वसत्यै धृतो नाभिकोषः
परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम्॥

करा विठ्ठल स्मरण। नामीं रूपी अनुसन्धान।
जाणोनि भक्तां भवलक्षण। जघानप्रमाण दावीतसे॥
कटीवरी ठेवूनी हात। जना दावित संकेत।
भव-जलाब्धीचा अंत। इतुलाचि॥

श्रीविठ्ठलनाथजीका स्मरण करो। नाममें, रूपमें, उन्हींका अनुसन्धान करो। भक्तोंको जानकर बतलाते हैं कि भवसागर जाँघके बराबर है। कटिपर हाथ रखकर (भक्त) जनोंको यह संकेत करते हैं कि भवजलाब्धिका अन्त यहींतक है।'

(१०) **असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे**
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

महिम्नःस्तोत्रका यह श्लोक प्रसिद्ध है। इस श्लोककी छाया आगे दिये हुए अभंगानुवादपर विशेषतः उसके चतुर्थ चरणानुवादपर कितनी पड़ी हुई है यह देखिये—

'जिसके गीत गाते हुए जहाँ श्रुतिशास्त्रोंको मौन हो जाना पड़ता है वहाँ मेरी वाणी ही क्या जो उस स्तुतिको पूरा करे! जहाँ शेषनाग भी अपने सहस्त्रमुखोंसे स्तुति करते-करते थक गये, जहाँ सिन्धुपात्रमें सम्पूर्ण मही भी घुलकर स्याही हो जाय तो भी पूरा न पड़े, वहाँ मेरी वाणी ही क्या जो उस स्तुतिको पूरा करे! तेरी कीर्ति तेरे सामने बखान करूँ तो अखिल ब्रह्माण्डमें भी वह न समा सकेगी; मेरुकी लेखनी, सागरकी स्याही और भूमिका कागज तो पूरा पड़ ही नहीं सकता।'

१३-तुकारामजीका संस्कृत-ज्ञान

तात्पर्य, गीता, भागवत, कई अन्य पुराण तथा महिम्नादि स्तोत्रोंको तुकारामजीने बहुत अच्छी तरहसे पढ़ा था। जिन लोगोंकी यह धारणा हो कि तुकाराम लिखे-पढ़े नहीं थे वे आश्चर्य करेंगे। तुकारामजीने भण्डारापर्वतपर ज्ञानेश्वरी और नाथभागवतादि ग्रन्थोंके अनेक पारायण किये थे। वह मराठी बहुत अच्छी तरहसे लिख सकते थे। बाललीलाके जो अभंग उन्होंने बनाये उन्हें उन्होंने अपने हाथसे लिखा। अब वह संस्कृत जानते थे या नहीं और यदि जानते थे तो कितनी जानते थे, यह प्रश्न रहा। गीता और भागवतके अवतरण देकर उनके साथ उनके अभंगोंका जो मिलान किया गया है उससे यह प्रश्न बहुत कुछ हल हो जाता है। समानार्थक अवतरण सैकड़ों दिये जा सकते हैं परन्तु हमने केवल ऐसे ही अवतरण दिये हैं जिनसे यह बात निर्विवादरूपसे स्पष्ट हो जाय कि तुकारामजी मूल संस्कृत-ग्रन्थोंको देखते थे और मूलके वचन गुनगुनाते हुए ही कई अभंग उन्होंने रचे हैं। तुकारामजीने स्वयं कहा है कि मैंने अक्षरोंपर बड़ा परिश्रम किया, 'पुराणोंको देखा और दर्शनोंमें खोज की।' इससे यह स्पष्ट है कि मूल संस्कृत-ग्रन्थोंको उन्होंने केवल सुना नहीं, स्वयं देखा और पढ़ा था। देखनेमें भी अन्तर हो सकता है। व्याकरणके नियम चाहे उन्होंने न घोखे हों, उन नियमोंकी उन्हें कोई आवश्यकता भी नहीं थी। पर भागवतादि ग्रन्थ मूल संस्कृतमें वह पढ़ते थे और उनका अर्थ समझनेमें उन्हें कोई कठिनाई न होती थी। उसके पूर्व उन्होंने किसी उत्तम विद्वान्के मुखसे श्रवण भी किया होगा और उससे संस्कृतके साथ उनका परिचय बढ़ा होगा। कुछ लोग यह कहते हैं कि वैराग्य हो जानेके पश्चात् तुकारामजी कुछ कालतक पैठणमें रहे। वहाँ उन्होंने एक विद्वान् भगवद्भक्तके

जलचर बेचारोंने क्या किया जो धीवर उनकी घातमें रहता है? पर यह ऐसा ही है; यह जातिस्वभाव है, इनकी देह ही इनके वैरकी है। (वैसे ही) व्याध निरपराध मृगोंको मारा करता है। (और) तुका कहता है, खल जो हैं चाण्डाल, वे सन्तोंको ही सताया करते हैं। लुब्धक, धीवर, पिशुन तीनों दृष्टान्त तुकारामजीने उठा लिये हैं और उन्हें अभंग वाणीमें क्या खूबीसे बैठाया है।

भर्तृहरिके नीतिवैराग्यशतक और आचार्यके पाण्डुरङ्गाष्टक, षट्पदी और महिम्नादि स्तोत्र तुकारामजीके अवलोकन और पाठमें रहे होंगे। पाण्डुरङ्गाष्टकमें इस आशयका एक श्लोक है कि भगवान्‌ने कटिपर जो हाथ रखे हैं वह यह जतलानेके लिये कि भक्तोंके लिये भवसागर कमरके नीचे ही है।

(९) **प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानां**
नितम्बः कराभ्यां धृतो येन तस्मात्।
विधातुर्वसत्यै धृतो नाभिकोषः
परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम्॥

करा विट्ठल स्मरण। नामीं रूपी अनुसन्धान।
जाणोनि भक्तां भवलक्षण। जघानप्रमाण दावीतसे॥
कटीवरी ठेवूनी हात। जना दावित संकेत।
भव-जलाब्धीचा अंत। इतुलाचि॥

श्रीविट्ठलनाथजीका स्मरण करो। नाममें, रूपमें, उन्हींका अनुसन्धान करो। भक्तोंको जानकर बतलाते हैं कि भवसागर जाँघके बराबर है। कटिपर हाथ रखकर (भक्त) जनोंको यह संकेत करते हैं कि भवजलाब्धिका अन्त यहींतक है।'

(१०) **असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे**
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

महिम्नःस्तोत्रका यह श्लोक प्रसिद्ध है। इस श्लोककी छाया आगे दिये हुए अभंगानुवादपर विशेषतः उसके चतुर्थ चरणानुवादपर कितनी पड़ी हुई है यह देखिये—

'जिसके गीत गाते हुए जहाँ श्रुतिशास्त्रोंको मौन हो जाना पड़ता है वहाँ मेरी वाणी ही क्या जो उस स्तुतिको पूरा करे! जहाँ शेषनाग भी अपने सहस्रमुखोंसे स्तुति करते-करते थक गये, जहाँ सिन्धुपात्रमें सम्पूर्ण मही भी घुलकर स्याही हो जाय तो भी पूरा न पड़े, वहाँ मेरी वाणी ही क्या जो उस स्तुतिको पूरा करे! तेरी कीर्ति तेरे सामने बखान करूँ तो अखिल ब्रह्माण्डमें भी वह न समा सकेगी; मेरुकी लेखनी, सागरकी स्याही और भूमिका कागज तो पूरा पड़ ही नहीं सकता।'

१३-तुकारामजीका संस्कृत-ज्ञान

तात्पर्य, गीता, भागवत, कई अन्य पुराण तथा महिम्नादि स्तोत्रोंको तुकारामजीने बहुत अच्छी तरहसे पढ़ा था। जिन लोगोंकी यह धारणा हो कि तुकाराम लिखे-पढ़े नहीं थे वे आश्चर्य करेंगे। तुकारामजीने भण्डारापर्वतपर ज्ञानेश्वरी और नाथभागवतादि ग्रन्थोंके अनेक पारायण किये थे। वह मराठी बहुत अच्छी तरहसे लिख सकते थे। बाललीलाके जो अभंग उन्होंने बनाये उन्हें उन्होंने अपने हाथसे लिखा। अब वह संस्कृत जानते थे या नहीं और यदि जानते थे तो कितनी जानते थे, यह प्रश्न रहा। गीता और भागवतके अवतरण देकर उनके साथ उनके अभंगोंका जो मिलान किया गया है उससे यह प्रश्न बहुत कुछ हल हो जाता है। समानार्थक अवतरण सैकड़ों दिये जा सकते हैं परन्तु हमने केवल ऐसे ही अवतरण दिये हैं जिनसे यह बात निर्विवादरूपसे स्पष्ट हो जाय कि तुकारामजी मूल संस्कृत-ग्रन्थोंको देखते थे और मूलके वचन गुनगुनाते हुए ही कई अभंग उन्होंने रचे हैं। तुकारामजीने स्वयं कहा है कि मैंने अक्षरोंपर बड़ा परिश्रम किया, 'पुराणोंको देखा और दर्शनोंमें खोज की।' इससे यह स्पष्ट है कि मूल संस्कृत-ग्रन्थोंको उन्होंने केवल सुना नहीं, स्वयं देखा और पढ़ा था। देखनेमें भी अन्तर हो सकता है। व्याकरणके नियम चाहे उन्होंने न घोखे हों, उन नियमोंकी उन्हें कोई आवश्यकता भी नहीं थी। पर भागवतादि ग्रन्थ मूल संस्कृतमें वह पढ़ते थे और उनका अर्थ समझनेमें उन्हें कोई कठिनाई न होती थी। उसके पूर्व उन्होंने किसी उत्तम विद्वान्के मुखसे श्रवण भी किया होगा और उससे संस्कृतके साथ उनका परिचय बढ़ा होगा। कुछ लोग यह कहते हैं कि वैराग्य हो जानेके पश्चात् तुकारामजी कुछ कालतक पैठणमें रहे। वहाँ उन्होंने एक विद्वान् भगवद्भक्तके

मुँहसे सार्थ सम्पूर्ण भागवत सुनी और पीछे भण्डारा लौटनेपर उन्होंने भागवतके अर्थ-बोधके लिये उसके अनेक पारायण किये। भागवतसम्प्रदायके भागवतसंहिताके सप्ताह बहुतोंने देखे होंगे अथवा चातुर्मास्यमें भागवतपुराण भी श्रवण किया होगा। यह परिपाटी अति प्राचीन है। तुकारामजीने भी सप्ताह और पुराण सुने होंगे। सप्ताहमें अनेक आस्थावान् श्रोता भागवतकी पोथी सामने रखकर शुद्ध पाठ भी किया करते हैं और नित्य पुराण-श्रवण करते-करते बुद्धिमान् पुरुषोंको ही क्यों, स्त्रियोंको भी महत्त्वके अच्छे-अच्छे श्लोक कण्ठ हो जाते हैं। कुछ लोगोंका यह मत है कि इसी तरहसे तुकारामजीको भी कुछ श्लोक याद हो गये, अन्यथा संस्कृतका उन्हें बोध नहीं था। पर ऐसा समझ बैठना युक्तियुक्त नहीं है। स्वयं तुकारामजी ही जब कहते हैं कि 'पुराणोंको देखा, दर्शनोंको ढूँढ़ा।' तब हमें उसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। 'पुराणोंको देखा' याने भावार्थ समझनेके लिये मैंने स्वयं पुराणोंको पढ़ा और 'दर्शनोंको ढूँढ़ा' याने शास्त्र-ग्रन्थोंमें ढूँढ़-खोज की; और इनका तात्पर्यार्थ यही समझा कि 'विठोबाकी शरणमें जाओ, निजनिष्ठासे नाम-संकीर्तन करो।' तुकारामजीने दो-चार बार जो यह कहा है कि 'वेदोंके अक्षर पढ़नेका मुझे अधिकार नहीं' इसका भी मर्म जानना ही होगा। उनके कथनका अभिप्राय यह है कि सन्तोंके वचन मैंने याद किये, भागवतके कुछ श्लोक और स्तोत्र कण्ठ किये, इसी प्रकार यदि मुझे वेद-वचन कण्ठ करनेका अधिकार होता तो उपनिषदोंको देखकर उसे भी नित्य पाठके योग्य वचन-संग्रह मैं कर लेता। शास्त्र-पुराण उन्होंने स्वयं देखे, वेदोंको भी देखते यदि अधिकार होता, यही इसका स्पष्ट अभिप्राय है। वह इतनी संस्कृत जान गये थे कि भागवतादि ग्रन्थोंको मूलमें ही देखकर उनका भावार्थ समझ लेते। उनकी श्रद्धा और बुद्धि अलौकिक थी, शास्त्र-पुराणोंके भावार्थको तुरंत ग्रहण कर लेनेयोग्य उनकी अन्तःकरण-प्रवृत्ति थी। इस कारण इन ग्रन्थोंको देखते-देखते उन ग्रन्थोंका अर्थबोध होनेयोग्य संस्कृत-भाषाका ज्ञान प्राप्त हो जाना उनके लिये कुछ भी कठिन नहीं था। शास्त्रों और पुराणोंका रहस्य विशद करनेवाले प्राकृत ग्रन्थ भी मौजूद थे और उन ग्रन्थोंको भी उन्होंने देखा था। इसलिये मूल ग्रन्थोंको देखकर उनका भावार्थ जान लेना उनके-से प्रज्ञा-प्रतिभावान् पुरुषके लिये सहज ही था। वेद-शास्त्र-पुराणोंका रहस्य ज्ञानेश्वरी

और नाथभागवतमें व्यक्त हुआ था, और इन ग्रन्थोंको तुकारामजीने अपने हृदयसे लगा रखा था। तुकारामजीका आचार उत्तम ब्राह्मणोंके भी अनुकरण करनेयोग्य था। देवपूजादिके मन्त्र उन्हें कण्ठ थे। पूजा समाप्त करते हुए '**मन्त्रहीनं क्रियाहीनम्**' इत्यादि कहकर प्रार्थना की जाती है। तुकारामजी कहते हैं—

असो मन्त्रहीन क्रिया। नका चर्या विचारूँ॥ १॥
सेवेमध्यें जमा धरा। कृपा करा सेवटीं॥ २॥

'कर्म मेरा मन्त्रहीन हुआ हो, रीत-अनरीत जो कुछ हो, कुछ मत विचारिये। सेवामें इसे जमा करिये और अन्तमें कृपा कीजिये।'

भोजन-समयमें '**हरिर्दाता हरिर्भोक्ता**' इत्यादि कहा करते हैं। तुकारामजीने एक उसीको अपनी वाणीमें यों कहा है—'**दाता नारायण। स्वयं भोगिता आपण॥**' तुकारामजीका बड़ा ही सुन्दर अभंग है—'**कासयानें पूजा करूँ केशीराजा**' एक बार ऐसा हुआ कि तुकारामजी सब पूजा-सामग्री पास रखकर पूजा करने बैठे, पूजा आरम्भ भी नहीं होने पायी और तुकारामजीको ध्यान लग गया। पूज्य-पूजक और पूजा-साहित्य, यह त्रिपुटी नहीं रही, तीनों एकाकार हो गये। जिस अभंगकी बात कह रहे थे वह इसी समयका अभंग है। यह आचार्यके 'परा-पूजा' नामक प्रकरणके भावमें है। इससे कुछ लोग बड़ी अधीरतासे यह कह देते हैं कि तुकारामजी मूर्तिपूजक नहीं थे। पर इस अभंगसे यदि कोई बात साबित होती है तो वह यही कि तुकारामजी बड़े आस्थावान् और नियमी मूर्तिपूजक थे, और चन्दन, अक्षत, फूल, धूप-दीप, दक्षिणा, आरती, भजन, नैवेद्यके साथ नित्य शास्त्रोक्त रीतिसे भगवान्‌की प्रतिमाका पूजन करते थे। नित्यकर्मके वह बड़े पक्के थे, जरा भी ढिलाई उनमें नहीं थी। उन्हींका वचन है '**कांहीं नित्यनेमावींण। अन्न खाय तोचि श्वान**' (कुछ नित्य नियमोंके बिना जो अन्न खाता है वह कुत्ता है।) केवल भण्डारेपर जाकर ग्रन्थ पढ़े, एकाकार भगवान्‌की शाब्दिक प्रार्थना की और रातको गाँवके देवालयमें दो पहर कीर्तन कर लिया, इतना ही तुकारामजीका कार्यक्रम नहीं था, कुल-परम्परागत श्रीपाण्डुरङ्गकी पूजा भी वह नित्य-नियमपूर्वक और अत्यन्त श्रद्धाके साथ करते थे। चैतन्यघन भगवान्‌की मूर्ति भी चैतन्यघन है, भगवान् सामने खड़े हैं, षोडश उपचारोंके साथ प्रेमपूर्वक उनका पूजन करना परमानन्दप्रद जीव-धर्म है। ऐसे आनन्दमग्न होकर वह भगवान्‌की पूजा करते थे। पूजामें सब मन्त्र पुराणोक्त ही

मुँहसे सार्थ सम्पूर्ण भागवत सुनी और पीछे भण्डारा लौटनेपर उन्होंने भागवतके अर्थ-बोधके लिये उसके अनेक पारायण किये। भागवतसम्प्रदायके भागवतसंहिताके सप्ताह बहुतोंने देखे होंगे अथवा चातुर्मास्यमें भागवतपुराण भी श्रवण किया होगा। यह परिपाटी अति प्राचीन है। तुकारामजीने भी सप्ताह और पुराण सुने होंगे। सप्ताहमें अनेक आस्थावान् श्रोता भागवतकी पोथी सामने रखकर शुद्ध पाठ भी किया करते हैं और नित्य पुराण-श्रवण करते-करते बुद्धिमान् पुरुषोंको ही क्यों, स्त्रियोंको भी महत्त्वके अच्छे-अच्छे श्लोक कण्ठ हो जाते हैं। कुछ लोगोंका यह मत है कि इसी तरहसे तुकारामजीको भी कुछ श्लोक याद हो गये, अन्यथा संस्कृतका उन्हें बोध नहीं था। पर ऐसा समझ बैठना युक्तियुक्त नहीं है। स्वयं तुकारामजी ही जब कहते हैं कि 'पुराणोंको देखा, दर्शनोंको ढूँढ़ा।' तब हमें उसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। 'पुराणोंको देखा' याने भावार्थ समझनेके लिये मैंने स्वयं पुराणोंको पढ़ा और 'दर्शनोंको ढूँढ़ा' याने शास्त्र-ग्रन्थोंमें ढूँढ़-खोज की; और इनका तात्पर्यार्थ यही समझा कि 'विठोबाकी शरणमें जाओ, निजनिष्ठासे नाम-संकीर्तन करो।' तुकारामजीने दो-चार बार जो यह कहा है कि 'वेदोंके अक्षर पढ़नेका मुझे अधिकार नहीं' इसका भी मर्म जानना ही होगा। उनके कथनका अभिप्राय यह है कि सन्तोंके वचन मैंने याद किये, भागवतके कुछ श्लोक और स्तोत्र कण्ठ किये, इसी प्रकार यदि मुझे वेद-वचन कण्ठ करनेका अधिकार होता तो उपनिषदोंको देखकर उसे भी नित्य पाठके योग्य वचन-संग्रह मैं कर लेता। शास्त्र-पुराण उन्होंने स्वयं देखे, वेदोंको भी देखते यदि अधिकार होता, यही इसका स्पष्ट अभिप्राय है। वह इतनी संस्कृत जान गये थे कि भागवतादि ग्रन्थोंको मूलमें ही देखकर उनका भावार्थ समझ लेते। उनकी श्रद्धा और बुद्धि अलौकिक थी, शास्त्र-पुराणोंके भावार्थको तुरंत ग्रहण कर लेनेयोग्य उनकी अन्तःकरण-प्रवृत्ति थी। इस कारण इन ग्रन्थोंको देखते-देखते उन ग्रन्थोंका अर्थबोध होनेयोग्य संस्कृत-भाषाका ज्ञान प्राप्त हो जाना उनके लिये कुछ भी कठिन नहीं था। शास्त्रों और पुराणोंका रहस्य विशद करनेवाले प्राकृत ग्रन्थ भी मौजूद थे और उन ग्रन्थोंको भी उन्होंने देखा था। इसलिये मूल ग्रन्थोंको देखकर उनका भावार्थ जान लेना उनके-से प्रज्ञा-प्रतिभावान् पुरुषके लिये सहज ही था। वेद-शास्त्र-पुराणोंका रहस्य ज्ञानेश्वरी

और नाथभागवतमें व्यक्त हुआ था, और इन ग्रन्थोंको तुकारामजीने अपने हृदयसे लगा रखा था। तुकारामजीका आचार उत्तम ब्राह्मणोंके भी अनुकरण करनेयोग्य था। देवपूजादिके मन्त्र उन्हें कण्ठ थे। पूजा समाप्त करते हुए '**मन्त्रहीनं क्रियाहीनम्**' इत्यादि कहकर प्रार्थना की जाती है। तुकारामजी कहते हैं—

असो मन्त्रहीन क्रिया। नका चर्या विचारूँ॥ १॥
सेवेमध्यें जमा धरा। कृपा करा सेवटीं॥ २॥

'कर्म मेरा मन्त्रहीन हुआ हो, रीत-अनरीत जो कुछ हो, कुछ मत विचारिये। सेवामें इसे जमा करिये और अन्तमें कृपा कीजिये।'

भोजन-समयमें '**हरिर्दाता हरिर्भोक्ता**' इत्यादि कहा करते हैं। तुकारामजीने एक उसीको अपनी वाणीमें यों कहा है—'**दाता नारायण। स्वयं भोगिता आपण॥**' तुकारामजीका बड़ा ही सुन्दर अभंग है—'**कासयानें पूजा करूँ केशीराजा**' एक बार ऐसा हुआ कि तुकारामजी सब पूजा-सामग्री पास रखकर पूजा करने बैठे, पूजा आरम्भ भी नहीं होने पायी और तुकारामजीको ध्यान लग गया। पूज्य-पूजक और पूजा-साहित्य, यह त्रिपुटी नहीं रही, तीनों एकाकार हो गये। जिस अभंगकी बात कह रहे थे वह इसी समयका अभंग है। यह आचार्यके 'परा-पूजा' नामक प्रकरणके भावमें है। इससे कुछ लोग बड़ी अधीरतासे यह कह देते हैं कि तुकारामजी मूर्तिपूजक नहीं थे। पर इस अभंगसे यदि कोई बात साबित होती है तो वह यही कि तुकारामजी बड़े आस्थावान् और नियमी मूर्तिपूजक थे, और चन्दन, अक्षत, फूल, धूप-दीप, दक्षिणा, आरती, भजन, नैवेद्यके साथ नित्य शास्त्रोक्त रीतिसे भगवान्‌की प्रतिमाका पूजन करते थे। नित्यकर्मके वह बड़े पक्के थे, जरा भी ढिलाई उनमें नहीं थी। उन्हींका वचन है '**कांहीं नित्यनेमावींण। अन्न खाय तोचि श्वान**' (कुछ नित्य नियमोंके बिना जो अन्न खाता है वह कुत्ता है।) केवल भण्डारेपर जाकर ग्रन्थ पढ़े, एकाकार भगवान्‌की शाब्दिक प्रार्थना की और रातको गाँवके देवालयमें दो पहर कीर्तन कर लिया, इतना ही तुकारामजीका कार्यक्रम नहीं था, कुल-परम्परागत श्रीपाण्डुरङ्गकी पूजा भी वह नित्य-नियमपूर्वक और अत्यन्त श्रद्धाके साथ करते थे। चैतन्यघन भगवान्‌की मूर्ति भी चैतन्यघन है, भगवान् सामने खड़े हैं, षोडश उपचारोंके साथ प्रेमपूर्वक उनका पूजन करना परमानन्दप्रद जीव-धर्म है। ऐसे आनन्दमग्न होकर वह भगवान्‌की पूजा करते थे। पूजामें सब मन्त्र पुराणोक्त ही

है। भगवान्‌की पूजा करनेका अधिकार सब जीवोंको है। तुकारामजीकी सश्रद्ध-समन्त्र पूजा, उनका पवित्र रहन-सहन, उनका संस्कृत और प्राकृत भाषाओंके अध्यात्म-ग्रन्थोंका अवलोकन, नित्य पाठ और कीर्तन, यह सब इतना आस्थायुक्त था कि ऐसे आचारवान् पुरुष ब्राह्मणोंमें भी बहुत कम मिल सकते हैं। बहुजनसमाजपर उनके इस चरित्रका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा और उनकी भगवद्भक्तिका डंका सर्वत्र बजने लगा। पुराणमताभिमानियोंको तुकारामजीका यह यश दु:सह होने लगा। उनकी ओरसे रामेश्वर भट्ट नामके एक पुरुष तुकारामजीसे लड़ने-झगड़नेके लिये आगे बढ़े। वह प्रसङ्ग आगे आवेगा। तुकारामजीके संस्कृत-ग्रन्थोंके अध्ययनका यहाँतक विचार हुआ, अब उनके प्राकृत ग्रन्थाध्ययनकी बात देखें।

१४-ज्ञानेश्वरी

ज्ञानेश्वरीके साथ तुकारामजीका कितना गाढ़ा परिचय था यह दिखलानेके लिये ज्ञानेश्वरीके कुछ वचन और साथ ही उनसे मिलान करनेके लिये तुकारामजीके वचन उद्धृत करते हैं।

(१) राम हृदयमें हैं पर भ्रान्त जीव बाह्य विषयोंपर लुब्ध होते हैं। ज्ञानेश्वरी (अ० ९) में इनके लिये जोंक और दादुरकी उपमाएँ दी हैं। 'गौका दूध कितना पवित्र और मीठा होता है और होता भी है कितना पास—त्वचाके एक ही परदेके अन्दर। पर जोंक उसका तिरस्कारकर अशुद्ध रक्तका ही सेवन करती है।' (५७) 'अथवा कमलमकरन्द और मेढक एक ही स्थानमें रहते हैं तो भी कमलमकरन्दका सेवन भौंरें ही करते हैं और मेढकके लिये कीचड़ ही बचता है' (५८) शतचरण अभंगमें तुकारामजीने भी यही दृष्टान्त दिया है—'नामनिन्दकके लिये भगवान् वैसे ही दूर हैं, जैसे जोंकके लिये दूध।'

(२) ज्ञानेश्वरी अ० १२—९० में यह ओवी है कि 'सहस्रों नामोंकी नौकाओंके रूपमें सजकर मैं संसारमें तारक बना हूँ।' तुकारामजीका अभंग है कि 'सहस्र नामोंकी नौकाको ठीक कर लो जो भव-सिन्धुके पार ले जाती है।'

(३) बीज फूटकर पेड़ होता है, पेड़ गिरकर बीजमें समाता है। (ज्ञानेश्वरी १७—५९) तुकाराम कहते हैं—पेड़ बीजके पेटमें और बीज पेड़के अन्तमें।

(४) पण्डित बालकका हाथ पकड़कर स्वयं ही अच्छे अक्षर लिखता है

(ज्ञाने० १३—३०८)। तुकाराम-बच्चेके लिये गुरुजी ही पटिया अपने हाथमें लेते हैं।

(५) सूर्यके तेजके सामने जुगुनूकी चमक क्या? (ज्ञाने० १ — ६७) तुकाराम—'सूरजके सामने जुगुनू पुट्ठे दिखावे।'

(६) 'अखिल जगत् महासुखसे तन जाता है।' (ज्ञाने० ९—२००) तुका कहता है, 'अखिल जगत् भगवान्‌से तन गया है। उसीके गीत गाओ, यही काम बाकी है।'

(७) यहाँ वे ही लीलामात्रसे (अनायास) तर गये जिन्होंने मेरा भजन किया। उनके लिये मायाजल इसी पार समाप्त हो गया। (ज्ञाने० ७—९७) तुकाराम—मुखसे नारायण-नाम गाने लगे तब भव-बन्धन कहाँ रहा? भव-सिन्धु तो इसी पार समाप्त हो जायगा।

(८) सन्त ज्ञानके देवालय हैं, सेवा उसका द्वार है, इसे दखल कर लो। (ज्ञाने० ४—१६६) तुकाराम—सन्तोंके चरणोंमें चुपचाप पड़े रहो।

(९) देवता भाट बनकर मृत्युलोककी स्तुति करने लगते हैं। (ज्ञाने० ६—४५६) तुकाराम—स्वर्गके देवता यह इच्छा करते हैं कि मृत्युलोकमें हमारा जन्म हो।

(१०) इन्द्रियाँ आपसमें कलह करने लगेंगी। (ज्ञाने० ६—१६) तुकाराम—मेरी इन्द्रियोंमें परस्पर कलह लगी।

(११) अपने ही शरीरके रोम कोई नहीं गिन सकता, वैसे ही मेरी विभूतियाँ असंख्य हैं। (ज्ञाने० १०—२१०) तुकाराम—विराट्के शरीरमें वैसे ही, गिनने लगें तो, अगणित केश हैं।

(१२) मेरी जिससे प्राप्ति हो वही शुद्ध पुण्य है। (ज्ञाने० ९—३१६) तुकाराम—जिसमें नारायण हैं वही शुद्ध पुण्य है।

(१३) उस अनन्यगतिसे मेरा प्रेम है। (१०—१३७) तुकाराम नारायण अनन्यके प्रेमी हैं।

(१४) जब गर्भिणी स्त्रीको परोसा गया तभी गर्भवासी अर्भककी तृप्ति हुई। (ज्ञाने० १३—८४८) तुकाराम—माताकी तृप्तिसे ही गर्भस्थ बालक तृप्त होता है…।

(१५) अपनी कोई स्वतन्त्र इच्छा न रखकर भगवान्‌की इच्छाके अनुकूल हो जाय, यह बतलाते हुए ज्ञानेश्वरजी जलका दृष्टान्त देते हैं—'माली जलको जिधर ले जाता है, जल उधर ही शान्तिके साथ जाता है, वैसे ही तुम बनो।' तुकारामजी कहते हैं—'जल जिधर ले जाइये उधर ही जाता है, जो कीजिये वही हो जाता है। राई, प्याज और ऊख एक ही जलके भिन्न-भिन्न रस हैं।'

ज्ञानेश्वरजीके दृष्टान्तको यहाँ तुकारामजीने और भी मधुर और विशद कर दिया है। उपाधि-भेदसे राई (तामस), प्याज (राजस) और ऊख (सात्त्विक) में जल त्रिविध होनेपर भी जल तो एक ही है। जलकी जैसी अपनी कोई इच्छा या आग्रह नहीं वैसे ही मनुष्यको निष्काम होना चाहिये।

(१६) नवें अध्यायमें गुह्य ज्ञान बतलाते हुए ज्ञानदेव सञ्जयकी सुखावस्था वर्णन करते हैं—

'(श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें) चित्त मगन होकर स्थिर हो गया, वाणी जहाँ-की-तहाँ स्तब्ध हो गयी, आपादमस्तक सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। आँखें अधखुली रह गयीं और उनसे आनन्दजल बरसने लगा और अन्दर आनन्दकी जो लहरें उठीं उनसे बाहर शरीर काँपने लगा। (५२७, ५२८) ऐसे महासुखके अलौकिक रससे जीवदशा नष्ट होने लगी। (५३०)

* * *

तुकाराम कहते हैं—

स्थिरावली वृत्ति पांगुळला प्राण।
अंतरीं ची खूण पावुनियां॥ १॥
पुंजाळले नेत्र जाले अर्धोन्मीलित।
कंठ सद्गदित रोमांच आले॥ ध्रु०॥
चित्त चाकाटलें स्वरूपामाझारी।
न निघेचि बाहेरी सुखावलें॥ २॥
तुका म्हणे सुखें प्रेमेसी डुल्लत।
विरालों निश्चित निश्चिताने॥ ३॥
(स्थिर हुई वृत्ति, रुद्धगति प्राण।
निज पहिचान, जब पायी॥ १॥

आस्फालित नेत्र, हुए अर्धोन्मीलित।
कंठ गद्गदित, रोमहर्ष॥ ध्रु०॥
चित्त सुचकित, स्वरूप-निमग्न।
करे न गमन, ऐसा सुखी॥ २॥
तुका कहे प्रेम, सुखसे डोलत।
निर्मुक्त निश्चित, निश्चिंत हो॥ ३॥)

(१७) संसारमें रहते हुए अपना अक्रियत्व कैसे जाना जाय, यह बतलाते हुए ज्ञानेश्वरजीने बहुरूपिये (अ० ३—१७६) और स्फटिकका दृष्टान्त (अ० १५—२४९) दिया है। ये दोनों दृष्टान्त तुकारामजी '**नटनाट्य अवधें संपादिलें सोंग,**' (नटनाट्य सारा रचाया स्वाँग) इस अभंगमें एकत्र ले आये हैं।

(१८) अङ्गारोंकी सेजपर सुखकी नींद। (ज्ञानेश्वरी) खटमलकी चारपाईपर सुखकी कल्पना (तुकाराम)।

(१९) अद्वैतानुभवसे देह-भाव छूटनेपर, देहके रहते हुए भी देहसे अलग होनेके भावको प्राप्त होनेपर कर्म बन्धक नहीं होता। ज्ञानदेव इसपर मक्खनका दृष्टान्त देते हैं। दही मथकर जब उससे मक्खन निकाल लिया जाता है तब वह मक्खन छाछमें डालनेसे किसी प्रकार भी नहीं मिल सकता। इसी बातको तुकारामजी यों कहते हैं कि 'दहीसे मक्खन जब अलग कर लिया तब दोनों एक-दूसरेमें मिलाये नहीं जा सकते।'

(२०) प्यासा प्यासको ही पीये, भूखा भूखको ही खा जाय। (ज्ञा० १२—६३) तुकाराम—प्यास प्यासको पी गयी, भूख भूखको खा गयी।

(२१) सब प्राणी मेरे ही अवयव हैं, पर मायायोगसे जीवदशाको प्राप्त हुए हैं। (ज्ञाने० ७—६६) तुकाराम—एक ही देहके सब अङ्ग हैं जो सुख-दुःख भोगते—भुगतते हैं।

(२२) गीताके '**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्**' (अ० ९—३३) इस श्लोकपर ज्ञानेश्वरी टीका (४९१—५०७) और तुकारामजीके '**बाटे या जनाचें थोर वा आश्चर्य**' तथा '**विषयवढीं भुलले जीव**' ये दो अभंग मिलाकर पढ़नेसे यह बहुत ही अच्छी तरहसे ध्यानमें आ जाता है कि तुकारामजीके

विचारोंपर ज्ञानेश्वरीके अध्ययनका कितना गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था। ये जीव भगवान्‌को क्यों नहीं भजते; किस बलपर उन्मत्त होकर विषय-भोगमें पड़े हुए हैं, इनकी इस दशापर ज्ञानेश्वर-तुकाराम दोनोंको ही बड़ी दया आयी है।

ज्ञा०—अरे, ये मुझे न भजें ऐसा कौन-सा बल इन्हें मिल गया है, भोगमें ऐसे निश्चिन्त होकर कैसे पड़े हैं? (४९३)

तु०—इनमें कौन-सा ऐसा दम है जो अन्तकालमें काम दे? किस भरोसे ये निश्चिन्त हैं? यमदूतोंको वे क्या जवाब देंगे?

ज्ञा०— विद्या है या वयस् है, इन प्राणियोंको सुखका कौन-सा ऐसा बल-भरोसा है जो मुझे नहीं भजते? (४९४) जितने भी भोग हैं वे सब एक देहके ही सुख-साधनमें लगे हैं और देहका यह हाल है कि यह कालके मुँहमें पड़ी हुई है। (४९५)

तु०—संसारमें कालका कलेवा बनकर कौन सुखी हुआ है?

ज्ञा०—जहाँ चारों ओर दवानल धधक रहा था वहाँसे पाण्डव कैसे न बच निकलते? ये जीव इतने उपद्रवोंसे घिरे हुए हैं तो भी कैसे मुझे नहीं भजते?

तु०—क्या ये जीव मृत्युको भूल गये, इन्हें यह क्या चसका लगा है? बन्धनसे छूटनेके लिये ये देवकीनन्दनको क्यों नहीं याद करते?

(२३) चाहे कोई कितना ही दिमाग खर्च करे, वह चीनीको फिरसे ऊख नहीं बना सकता; वैसे ही उसे (भगवान्‌को) पाकर कोई जन्म-मृत्युके इस चक्करमें नहीं पड़ सकता। (ज्ञा० ८—२०२)

तु०—*साखरेचा नव्हे ऊँस। आम्हा कैंचा गर्भवास?॥ १॥*

'चीनीका जब फिरसे ऊख नहीं बनता तब हमें गर्भवास कैसे हो सकता है?'

(२४) भगवान्‌के गुण गाते-गाते वेद मौन हो गये और शेषनाग भी थक गये—'ज्ञानमें वेदोंसे भी बड़ा कोई है? या शेषनागसे भी बड़े और कोई बोलनेवाले हैं? पर वह शेषनाग भी शय्याके नीचे जा छिपते हैं और वेद '**नेति-नेति**' कहकर पीछे हट जाते हैं। यहाँ तो सनकादि भी बौरा गये।' (ज्ञा० ९—३७०-७१)

तु०-त्याचा पार नाहीं कळला वेदांसी।

आणिकही ऋषी विचारितां।
सहस्त्रमुखें शेष शिणला बापुडा।
चिरलिया धडा जिह्वा त्याच्या।
(आणि) शेष स्तुति प्रबर्तला।
जिह्वा चिरूनी पलंग झाला॥ १॥

'वेदोंने उनका पार नहीं पाया, ऋषि भी विचारते ही रह गये। सहस्त्रमुख शेष वेचारे थक गये, उनके धड़की जिह्वाएँ बन गयीं तो भी पार नहीं पा सके और शेष स्तुति करते-करते जिह्वा चीरकर पर्यंक बन गये।'

(२५) ज्ञानेश्वरीमें (अ० ६—७०से७८ तक) यह वर्णन है कि देहाभिमानी जीव किस प्रकार शुकनलिकान्यायसे आप ही अपने पैर अटकाकर आत्मघात करता है। इस शुकनलिकान्यायपर तुकारामजी कहते हैं—

आपही तारक, आपही मारक। आप उद्धारक, अपना रे॥
शुकनलिन्याय, फांसा आपही आप। देखतो स्वरूप, मुक्त जीव॥

'यह जीवात्मा आप ही अपना तारक, आप ही अपना मारक है। आप ही अपना उद्धारक है। रें मुक्त जीव! जरा सोच तो सही कि शुकनलिकान्यायसे तू कहाँ अटका हुआ है।'

(२६) बड़ोंके यहाँ छोटे-बड़े सभी एक-सा भोजन पाते हैं। (ज्ञाने० १८—४८)

तु०— समर्था सी नाहीं वर्णावर्ण-भेद। सामग्री ते सिद्ध सर्व घरीं॥ १॥
न म्हणे सुहृदसोयरा आवश्यक।
राजा आणि रंक सारिखेचि॥ २॥

'समर्थोंके यहाँ वर्णावर्ण-भेद नहीं होता। सिद्धोंके यहाँ सभी सामग्री सिद्ध ही होती है। यहाँ अपने सगे-सम्बन्धियोंकी बात नहीं है, क्योंकि राजा और रंक सभी वहाँ समान हैं।'

१५ एक पुरानी पोथी

यहाँतक लिख चुकनेके पश्चात् देहूमें एक पुरानी पोथी ऐसी मिली जिसमें ज्ञानेश्वरीके बारहवें अध्यायकी ओवियाँ और इनमेंसे कई ओवियोंके नीचे उन्हीं अर्थोंके तुकारामजीके अभङ्ग लिखे हुए थे। बारहवें अध्यायमें सगुण भक्तिका उत्तम प्रतिपादन है और इस कारण वारकरी सम्प्रदायमें इसकी विशेष मान्यता

है, यह पोथी तुकारामजीके ही खानदानमें उनके किसी पोते-परपोतेने लिखी होगी। सम्पूर्ण पोथी यहाँ उद्धृत करना असम्भव है। तथापि नमूनेके तौरपर दो-चार अवतरण यहाँ देते हैं—

१ ज्ञा०—व्यक्त और अव्यक्त, निःसंशय तुम्हीं एक हो। भक्तिसे व्यक्त और योगसे अव्यक्त मिलते हो। (२३)

तु०—जो कोई जैसा ध्यान करता है, दयालु भगवान् वैसे बन जाते हैं। सगुण-निर्गुणके धाम तो ईंटपर ये चरण धरे हैं।

* * *

योगी लखकर जिसका आभास पाते हैं वह हमें अपनी दृष्टिसे सामने दिखायी देता है।

२ ज्ञा०—एकदेशीय स्वरूप और सर्वव्यापक स्वरूप, दोनों समान ही हैं। (२५)

तु०—*म्हाणे विट्ठल ब्रह्म नव्हे। त्वाचे बोल नाई कावे॥*

'जो कहता है कि विट्ठल ब्रह्म नहीं हैं वह क्या कहता है यह सुननेकी जरूरत नहीं!'

३ ज्ञा०—जो ॐकारके परे हैं, वाणीके लिये जो अगम्य है। (३१)

तु०-यदि मैं स्तुति करूँ तो वेदोंसे भी जो काम नहीं बना वह मैं कर सकता हूँ? पर इस वैखरीको उस सुखका चसका लग गया है रसना वही रस चाहती है।

४ ज्ञा०—कर्मेन्द्रियाँ सुखपूर्वक उन अशेष कर्मोंको करती रहती हैं जो वर्णविशेषके भागके अनुसार प्राप्त होते हैं। (७६) और भी जो-जो कायिक, वाचिक, मानसिक भाव हैं उन सबके लिये मेरे सिवा और कोई ठौर-ठिकाना नहीं है। (७९)

तु०—अपने हिस्सेमें जो काम आया वही करता हूँ, पर भाव मेरा तेरे ही अंदर रहे। शरीर शरीरका धर्म पालन करता है, पर भीतरकी बात रे मन! तू मत भूल।

* * *

कहीं किसी औरका प्रयोजन नहीं, सब जगह मेरे लिये तू-ही-तू है।

तन, वाणी और मन तेरे चरणोंपर रखे हैं, अब हे भगवन्! और कुछ बचा न देख पड़ता।

५ ज्ञा०—अभ्यासके बलसे कितने अन्तरिक्षमें चलते हैं, कितनोंने व्याघ्र और सर्पके स्वभाव बदल डाले हैं। (१११) अभ्याससे विष भी पच जाता है, समुद्रपर भी चला जा सकता है; कितनोंने तो अभ्यासके बलसे वेदोंको भी पीछे छोड़ दिया है (११२) इसलिये अभ्यासके लिये तो कुछ भी दुष्कर नहीं है। इसलिये अभ्याससे तुम मेरे स्थानमें आ जाओ। (१३३)

तु०—अभ्याससे एक-एक तोला बचनाग खा जाते हैं, दूसरोंसे आँखों देखा नहीं जाता। अभ्याससे साँपको हाथमें पकड़ लेते हैं, दूसरे देखकर ही काँपने लगते हैं, अभ्याससे असाध्य भी साध्य हो जाता है; इसका कारण, तुका कहता है कि अभ्यास है।

१६-एकनाथ महाराजके ग्रन्थ

अब एकनाथ महाराजके ग्रन्थोंसे तुकारामजीका कितना घनिष्ठ परिचय था, यह देखा जाय। एकनाथीभागवत भावार्थरामायण फुटकर अभङ्ग इत्यादि साहित्य बहुत बड़ा है। नाथ-भागवत और अभङ्ग ही तुकारामजीके पाठ और अवलोकनमें विशेषरूपसे रहे होंगे। अन्त:प्रमाणके लिये अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं; पर अधिक विस्तार न करके कुछ ही प्रमाण यहाँ देते हैं—

(१) मेरे भक्त जो घर आये वे सब पर्वकाल ही द्वारपर आये। ऐसे तीर्थ जब घर आते हैं, वैष्णवोंके लिये वही दशमी-दिवाली है। (नाथ-भागवत ११—१२६६)

सन्त जब घर आते हैं तब दशहरा-दिवालीका-सा आनन्द मिलता है। यह अनुभव तो सभीको है; पर इस अनुभवको मूर्तरूप प्रदान किया एकनाथ महाराजने! उन्होंने एक अभङ्गमें भी कहा है—

आजी दिवाळी दसरा। श्रीसाधु संत आले घरा।। १ ॥

'आज ही दिवाली और दशहरा है, श्रीसाधु-संत जो घर पधारे हैं।'

तुकारामजीके अभङ्गका यह चरण तो अत्यन्त लोकप्रिय है—

साधु संत येती घरा। तोची दिवाळी दसरा॥ १ ॥

'साधु-संत घर आये वही दशहरा-दिवाली है।'

(२) आत्मबोधके लिये वैसी छटपटाहट हो जैसे जलके बिना मछली छटपटाती है। (ना० भा० ७—२३)

तु०—*जीवनावेगळी मासोळी। तुका तैसा तळमळी॥*

'जलके बाहर मछली जैसे छटपटाती है, तुका भी वैसे ही छटपटाता है।'

(३) *'संत आधी देव मग'* (एकनाथ)

'पहले सन्त पीछे देवता।'

देव सारावे परते। संत पूजावे आरते॥ १॥ (तुकाराम)

'देवताओंको परली तरफ कर दे, पहले सन्तोंको पूजे।'

(४) *रांडवा केले काजळकुंकु। देखोनी जग लागे थुंकूं॥*

(ना० भा० १—९६७)

'राँडका काजर लगाना, माँग भरना देखकर संसार उसपर थूकता है।'

कुंकवाची उठाठेव। बोडकाबाई काशाला?॥ (तुका०)

'राँडको सिन्दूर लेकर क्या करना है?'

(५) **'लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यम्'**

(श्रीमद्भा० ११। २३। २२)

श्रीमद्भागवतकी इस कल्पनाको एकनाथजीने (अ ९) और फैलाया है—

यालागीं नरदेह निधान। जेणें ब्रह्मसायुज्यीं घडे गमन॥
देव वांछिती मनुष्यपण। देवाचें स्तवन नरदेहा॥ २५९॥
मनुष्यदेहींचेनि ज्ञानें। सच्चिदानंदपदवी घेणें॥
एवढा अधिकार नारायणें। कृपावलाकनें दीधला॥ ३३॥

इसलिये नर-देह ऐसा स्थान है कि जिससे ब्रह्म-सायुज्यकी गति मिलती है। इसीलिये देवता मनुष्य-जन्म चाहते हैं और नर-देहकी स्तुति करते हैं। (२५९) मनुष्यदेहमें ही वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है जिससे वह सच्चिदानन्द-पदवीको प्राप्त करे। नारायणने अपनी कृपा-दृष्टिसे (नर-देवको) इतना बड़ा अधिकार दे रखा है।

तुकारामजी कहते हैं—

इहलोकीचा हा देह । देव इच्छिताती पाहे ॥ १ ॥
धन्य आम्ही जन्मा आलों । दास विठोबाचे झालों ॥ ध्रु० ॥
आयुष्याच्या या साधनें । सच्चिदानंदपदवी घेणें ॥ २ ॥
तुका म्हणे पाठवणी । करूं स्वर्गींची निशाणी ॥ ३ ॥

'इहलोककी यह देह, देखो, देवता भी चाहते हैं। इस देहमें जन्म मिलनेसे हम धन्य हुए जो श्रीविट्ठलके दास हुए। इसमें जो आयु मिली है वह सच्चिदानन्द-पदवीको प्राप्त करनेका साधन है। स्वर्गकी पताका, तुका कहता है कि भेंटमें भेजी जायगी।'

(६) *केवल जीं अपवित्र । रिसें आणि बानरें ।*
म्यां पूजिलीं गौळियांचीं पोरें । ताकपिरें रानटें ॥

(ना० भा० १४—२९०)

'रीछ और बन्दर जिनमें कोई पवित्रता नहीं और छाछ पीनेवाले असभ्य ग्वाल-बाल, इनका मैंने पूजन किया।'

गौळियांची ताकपिरें । कोण पोरें चांगळी? (तुकाराम)

'ग्वालोंके छाछ पीनेवाले बच्चे कौन-से बड़े अच्छे हैं?'

(७) चौपड़के खेलमें गोटीका मरना और जीना जैसा है, ज्ञानीकी दृष्टिमें जीवोंका बन्ध-मोक्ष भी वैसा ही है।

'सारी कौन-सी मरे पीछे, अपने पुण्यबलसे, वैकुण्ठधाम पहुँचती है? और कौन नरक सङ्कटमें गिरती है? बद्ध-मुक्तकी बात ही समूल मिथ्या है।' (नाथभागवत २९—७६८)

सारी जीयी मरी, झूठी बात सारी ।
बद्ध मुक्त वारी, बात कारी ॥ (तुकाराम)

सारी मरी-जीयी, यह बात झूठी है। वैसे ही बद्ध-मुक्त होनेवाली बात भी तुका कहता है कि कोरी बात ही है।

(८) क्या गृहस्थाश्रममें भगवान् नहीं हैं? तब वनमें पागल होकर क्यों भटकते हैं? वनमें यदि भगवान् होते तो हरिन, खरगोश, बाघ क्यों न तर जाते? आसन जमाकर ध्यान लगानेसे यदि भगवान् मिलते तो बक-समुदायोंका

क्षणमात्रमें उद्धार क्यों न होता? एकान्त गुफामें रहनेसे यदि भगवान् मिलते तो चूहे तरना छोड़ घर-घर चीं-चीं क्यों करते रहते? (नाथभागवत अ० ५)

कहो सांप खाता अन्न । करे क्या ध्यान, बक भी? ॥ १ ॥
कपट भरा भीतर । भरा उदर, मलसे ॥ध्रु० ॥
करे चूहा भी एकांत । गदहा भी भभूत, रमावे? ॥ २ ॥
तुका जल नक्रालय । काग भी नहाय, कहो तो? ॥ ३ ॥

(तुकाराम)

'क्या साँप अन्न खाता है? (नहीं, वायु-भक्षण करके ही रहता है।) और बकजी कैसा ध्यान करते हैं! इनके भीतर केवल कपट भरा है, पेटमें बुराई भरी है। चूहा भी बिलमें एकान्तमें रहता है। गदहा भी सर्वाङ्गमें भभूत रमा लेता है। जलमें ही घड़ियाल रहता है। कौआ जल-स्नान करता है। पर इससे क्या? इनके भीतर कपट भरा हुआ है, पेटमें बुराई भरी हुई है! इससे इन्हें कोई साधु या परमार्थके साधक नहीं कहता। वायु-भक्षण, ध्यान, एकान्तवास, भस्म-लेपन, जलमें बैठकर या खड़े होकर अनुष्ठान या स्नान—ये सब ईश्वर-प्राप्तिके साधन हैं सही, पर इनको करते हुए भी यदि बुद्धि निर्मल न हो तो इनसे कोई लाभ नहीं हो सकता।

(९) अद्वैत भक्ति और अभेद भक्तिके भाव और शब्द ज्ञानेश्वरीमें हैं। इसी भक्तिको एकनाथने 'मुक्तीवरील भक्ति' (मुक्तिके ऊपरकी भक्ति) कहा है। नाथ-भागवतमें ये शब्द दस-पाँच बार आये हैं। (अ० ९ ओवी ७१०से ८१० तक) इसी 'मुक्तिके ऊपरकी भक्ति'का उल्लेख तुकारामजीके एक अभङ्गके एक चरणमें है—

मुक्तीवरील भक्ति जाण। अखंड मुखीं नारायण॥

'मुखमें अखण्ड नारायण-नाम ही मुक्तिके ऊपरकी भक्ति जानो।'

(१०) *देहको मिथ्या कहके त्यागोगे । तो मोक्ष सुखसे पाओगे।*
इसे अच्छा जानके भोगोगे । तो अवश्य जावोगे नरकको।
इसलिये इसे न त्यागे न भोगे । बीचो-बीच विभाग।
आत्मसाधनमें यह लगे । स्वभावमें पगे स्वहितार्थ।

(नाथ-भागवत अ० ९। २५२-२५३)

'देहको घृणित समझकर त्याग दें तो मोक्ष-सुखसे ही वञ्चित होना पड़े, यदि इसे अच्छा समझकर भोगें तो सीधे नरकका रास्ता नापना पड़े। इसलिये इसे न त्यागे न भोगे, मध्यभागमें विभाग करे, इसे निज स्वभावसे आत्महितके लिये आत्मसाधनमें लगावे।'

देहको सुख, न देवे भोग। न देवे दु:ख, न करे त्याग॥
देह न हीन, न है उत्तम। तुका कहे तुम, करो हरि-भजन॥

(तुकाराम)

'शरीरको सुख-भोग न दे, दु:ख भी न दे, इसका त्याग भी न करे। शरीर न बुरा है न अच्छा है; तुका कहता है, इसे जल्दी हरि-भजनमें लगाओ।'

नाथका भावार्थरामायण भी तुकारामजीने देखा था, इसमें सन्देह नहीं। भावार्थरामायणसे दो अवतरण लेते हैं—

(११) 'वैराग्यकी बातें तभीतक हैं जबतक कोई सुन्दर स्त्री नेत्रोंके सामने नहीं आयी है।' (भावार्थरामायण अरण्य अ० ३)

'वैराग्यकी बातें बस, तभीतक हैं जबतक किसी सुन्दर स्त्रीपर दृष्टि नहीं पड़ी।' (तुकाराम)

(१२) 'श्रीरामनामके बिना जो मुख है वह केवल चर्मकुण्ड है। भीतर जो जिह्वा है वह चमड़ेका टुकड़ा है।' (भा० रामायण)

'जिसके मुहमें नाम नहीं वह मुँह चमारका कुंडा है।' (तुकाराम)

नाथ और तुकाराम दोनोंके ही अभंगोंके संग्रह प्रसिद्ध हैं। नाथके अभंगोंका पाठ और अध्ययन तुकारामजीने किया था और इसका तुकारामजीके चित्त और वाणीपर बड़ा प्रभाव पड़ा था। नाथ और तुकारामजीकी कुछ उक्तियाँ मिलाकर देखें। पहले नाथकी उक्ति देते हैं, पीछे तुकारामजीकी। पाठक इसी क्रमसे दोनोंको मिलाकर पढ़ें—

(१) एक सद्गुरुकी ही महिमा गाया करे, अन्य मनुष्योंकी स्तुति कुछ काम न देगी।

—एक विट्ठलकी ही महिमा गाया करे, मनुष्यके गीत न गाये!

(२) *चितनासी न लगे वेळ। कांहीं तया न लगे मोल॥*
वाचे सदा सर्वकाळ। रामकृष्ण हरी गोविंद॥ १॥

'चिन्तनके लिये कोई समय नहीं लगता, उसके लिये कुछ मूल्य नहीं देना पड़ता। सब समय ही '**राम कृष्ण हरि गोविन्द**' नाम जिह्वापर बना रहे।'

—चिंतनासी न लगे वेळ। सर्व काळ करावें॥

'चिन्तनके लिये कुछ समय नहीं चाहिये, सब समय ही करता रहे।'

(३) सदा '**राम कृष्ण हरि गोविन्द**' का चिन्तन करो। यही एक सत्य सार है, व्युत्पत्तिका भार केवल व्यर्थ है।

—यही एक सत्य सार है, व्युत्पत्तिका भार बेकार है।

(४) द्रव्य लेकर जो कथा-कीर्तन करते हैं वे दोनों ही नरकमें जाते हैं।

—कथा-कीर्तन करके जो द्रव्य देते या लेते हैं वे दोनों ही नरकमें जाते हैं।

(५) गीता और भागवतपर एकनाथ और तुकाराम दोनोंका ही असीम प्रेम था। दोनोंने ही नाम-स्मरणका उपदेश दिया है और दोनोंके हृदयमें हरिहरैक्यभाव था—

आयुष्य अंतवरी नाम-स्मरण । गीताभागवताचें श्रवण॥
विष्णुशिवमूर्तिचें ध्यान । हेंचि देणें सर्वथा॥

'जबतक जीवन है तबतक नाम-स्मरण करे, गीता-भागवत श्रवण करे और हरिहरमूर्तिका ध्यान करे····।'

—गीताभागवत करिती श्रवण। आणिक चिंतन विठोबाचें॥

'गीता-भागवत श्रवण करते हैं और विठोबाका चिन्तन करते हैं।'

(६) आपके नामकी महिमा हे पुरुषोत्तम! मैं नहीं समझ पाता।

—आपके नामकी महिमा हे पुरुषोत्तम! मैं नहीं समझ पाता।

(७) कर्माकर्मके फेरमें मत पड़ो। मैं भीतरी बात बतलाता हूँ। श्रीरामका नाम अट्टहासके साथ उचारो।

—धर्मको जो समझते हैं और जो नहीं समझते, सब सुनो, मैं रहस्यकी बात बतलाता हूँ। मेरे विठोबाके नाम अट्टहासके साथ उचारो।

(८) स्त्रीके अधीन होकर पुरुष स्त्रैण न बने उसके इशारेपर नाचकर अपना परमार्थ खो न दे। एकनाथ और तुकाराम दोनोंका यही उपदेश है।

स्त्रीके अधीन जिसका जीवन हो जाता है उस अधमको नरकमें जाना

पड़ता है। स्त्रीका रुख देखकर वह चलता है, और किसीकी बात उसे अच्छी नहीं लगती। (एकनाथ) स्त्रीके अधीन जिसका जीवन होता है उसको देखनेसे भी असगुन होता है। ये सब जन्तु संसारमें न जाने किसलिये मदारीके बन्दरकी तरह जीते हैं। स्त्रीकी मनोवाञ्छाको ही जो सत्य समझता है वह स्त्रैण सचमुच ही पूरा अभागा है। (तुकाराम)

यहाँ 'मदारीके बन्दर' की बात पढ़कर ज्ञानेश्वरीकी वह ओवी याद आती है जिसमें कहा है, 'स्त्रीके चित्तका जो आराधन करता है, उसीके रुखपर नाचता है, वह मदारीका बन्दर-जैसा है।' (अ० १३—७९३)

(९) हरि-हरके अभेदके सम्बन्धमें दोनोंके ही अभङ्ग देखने योग्य हैं। एकनाथके तीन अभङ्गोंका एक-एक चरण लेनेसे तुकारामजीका एक अभङ्ग बनता है।

हरिहरा भेद। नका करूँ अनुवाद॥
धरितां रे भेद। अधम तो जाणिजे॥ १॥

यह एक अभङ्गका प्रथम चरण है। दूसरे एक अभङ्गका तीसरा चरण ऐसा है—

गोडीसी साखर साखरेसी गोडी।
निवडितां अर्थघडी दुजी नव्हे॥

एक तीसरे अभङ्गका चरण इस प्रकार है—

एका वेलांटीची आढी। मूर्ख नेणती बापुडीं॥ १॥

इन तीनों चरणोंका भाव यह है कि 'हरि और हरमें भेदकी कल्पना कर उसका फैलाव मत करो। जो ऐसा भेद धारण करेगा उसे अधम समझो। मिठासमें चीनी है और चीनीमें मिठास है, अर्थको विचारो तो चीज एक ही है।'

'एक आडीकी ही आड है, इस बातको मूर्ख बेचारे नहीं जानते।'

इन तीनों चरणोंमें जो भाव हैं वे तुकारामजीके जिस अभङ्गमें एकीभूत हुए हैं उस अभङ्गको अब देखिये—

हरिहरां भेद। नाहीं, नका करूं वाद॥ १॥
एक एकाचे हृदयीं। गोडी साखरेचे ठायीं॥ ध्रु०॥

भेदकासी नाड । एक बेलांटीं च आड ॥ २ ॥
उजवा वाम भाग । तुका म्हणे एकचि अंग ॥ ३ ॥

'हरि-हरमें भेद नहीं है, झूठ-मूठ बहस मत करो। दोनों एक-दूसरेके हृदयमें हैं, जैसे मिठास चीनीमें और चीनी मिठासमें है। भेद करनेवालोंकी दृष्टिके जो आडे आती है वह एक आडीकी ही आड है। दाहिना और बायाँ दो थोड़े ही हैं, अङ्ग तो एक ही है।'

(१०) देव उभा मागें पुढें। वारी सांकडें भवाचें ॥ (एकनाथ)

'भगवान् आगे-पीछे खड़े खड़े संसारका संकट निवारण करते हैं।'

देव उभा मागें पुडें। उगवी कोडें संकट ॥ (तुका०)

'भगवान् आगे-पीछे खड़े संकटसे उबारते हैं।'

(११) सद्गुरु-महिमाके विषयमें एकनाथ महाराज कहते हैं—

उनके उपकार कभी उतारे नहीं जा सकते। प्राण भी उनके चरणोंपर रख दूँ तो यह भी थोड़ा है।

सन्त-स्तवनमें तुकाराम महाराज कहते हैं—

इनसे उऋण होनेके लिये इन्हें क्या देना चाहिये? यह प्राण भी चरणोंपर रख दूँ तो थोड़ा है!

(१२) पण्ढरीका वह वारकरी धन्य है, उसका जन्म धन्य है, जो नियमपूर्वक पण्ढरी जाता है और वारी टलने नहीं देता। (एक०)

— पंढरीचा वारकरी। वारी चुकों नेदी हरी ॥ (तुका०)

'पण्ढरीका वारकरी वारी और हरीको नहीं भूलता।'

(१३) दोचि अक्षरांचें काम । वाचे म्हणा रामनाम ॥ (एक०)
(दो ही अक्षरोंका काम । वाचा कहो राम नाम ॥)
दोचि अक्षरांचें काम । उच्चारावा रामराम ॥ (तुका०)
(दो ही अक्षरोंका काम । उचारो श्रीराम राम ॥)

(१४) बारं-बार लोगोंसे कहता हूँ,
सबसे यही दान माँगता हूँ।
बार-बार यही कहता हूँ
जगतसे यही दान माँगता हूँ ॥ (एक०)

(१५) भागवत-सम्प्रदायमें हरि-हरका समान प्रेम है और एकादशी तथा सोमवार दोनों ही व्रतोंका पालन विहित है।

जो सोमवार और एकादशी-व्रत रहते हैं उनके चरणमें अपने मस्तकसे वन्दन करूँगा। शिव-विष्णु दोनों एक ही प्रतिमा हैं ऐसा जिनका प्रेम है उन्हें वन्दन करूँगा। (एक०)

एकादशी और सोमवारका व्रत जो नहीं पालन करते उनकी न जाने क्या गति होगी! (तुका०)

(१६) जो मुझे नाम और रूपमें ले आये उन्होंने मुझपर बड़ी कृपा की। हे उद्धव! उन्होंने मुझे यह सुगम मार्ग दिखाया। (एक०)

—(भगवान्) नाम-रूपमें आ गये, इससे सुगम हो गये। (तुका०)

(१७) कहीं-कहीं ऐसा जान पड़ता है कि एकनाथ महाराजके अभङ्गका मनन करते हुए कहीं उनकी उक्तिकी पूर्तिके तौरपर और कहीं प्रेमसे उनकी बातका उत्तर देनेके लिये तुकारामजीने अभङ्ग रचे हैं। एकनाथ महाराजका एक अभङ्ग है, '**देवाचे ते आप्त जाणावे संत**' (भगवान्‌के जो आप्त हैं वे ही सन्त हैं)। इसी अभङ्गकी मानो पूर्तिके लिये तुकारामजीने '**नव्हती ते संत करितां कवित्व**' (सन्त वे नहीं हैं जो कविता करते हैं) इत्यादि अभङ्ग रचा है। बहिणाबाईका मूल 'सर्वसंग्रहगाथा' मुझे शिऊरमें उनके वंशजोंके पाससे मिला। उसमें बीचहीमें एक पन्नेपर एकनाथ महाराजका '**ब्रह्म सर्वगत सदा सम**' इत्यादि अभङ्ग लिखा हुआ था। इस अभङ्गका ध्रुवपद है, '**ऐसे कासयानें भेटती ते साधु**' (ऐसे महात्मा कैसे मिलते हैं)। इसी अभङ्गके नीचे तुकारामजीका '**ऐसे ऐसियाने भेटती ते साधु**' (ऐसे महात्मा ऐसे मिलते हैं) इत्यादि अभङ्ग दिया हुआ है।

(१८) ज्ञानेश्वरीका नाथ-भागवतपर और इन दोनों ग्रन्थोंका तुकारामजीके अभङ्गोंपर विलक्षण परिणाम घटित हुआ देख पड़ता है। अर्जुन जब मोहसे विकल हो उठा तब 'स्नेहकी कठिनता' बतलाते हुए ज्ञानदेव कहते हैं—

भौंरा चाहे जैसे कठिन काठको मौजके साथ भेदकर उसे खोखला कर देता है, पर कोमल कलिमें आकर फँस ही जाता है। (२०१) वह प्राणोंको उत्सर्ग कर देगा पर कमल-दलको नहीं चीरेगा। स्नेह कोमल होनेसे ऐसा कठिन है। (२०२ अ० १)

भौंरेका यह दृष्टान्त एकनाथ महाराजने ग्रहण किया है, साथ ही उसमें उन्होंने गृहस्थोंका नित्य परिचित बालकका मधुर दृष्टान्त जोड़ा है—

जो भौंरा सूखे काठको स्वयं कुरेद डालता है वह कोमल कमलके बीचमें आकर प्रीतिकी रीतिमें लग जाता है, केसरको जरा भी धक्का नहीं लगने देता। ऐसे ही बच्चा जब बापका पल्ला पकड़ लेता है तब बाप वहीं खड़ा रह जाता है, इसलिये नहीं कि बाप इतना दुर्बल है, बल्कि इस कारणसे कि वह स्नेहमें फँसकर वहीं गड़ जाता है। (नाथभागवत २। ७७७—७७९)

तुकारामजीने अपने अभङ्गमें इन दोनों दृष्टान्तोंका उपयोग किया है—

'जो भौंरा काठको कुछ नहीं समझता उसे फूल फँसा लेता है। 'प्रेम-प्रीतिका बँधा' किसी तरहसे नहीं छूटता। बच्चा पल्ला पकड़ लेता है तो बाप बालकके सामने लाचार हो जाता है। तुका कहता है, भावसे या भयसे भगवान्‌को भजो।'

तुकारामजीका एक और अभङ्ग है जिसमें बच्चेका दृष्टान्त फिरसे आया है—

प्रीतीचा कळह । पदरासी घाली पीळ।
सरों नेदी बाळ । मार्गें पुढें पित्यासी॥ १॥
काय लागे त्यासी बळ । हेडाविता काण काठ।
गोविती सबळ । जाळी स्नेह सूत्राची॥

'प्रेमकी कलह है। बच्चा पल्ला पकड़कर ऐंचता-ऐंठता है। बापको इधर-उधर हिलने नहीं देता है। यदि बाप चाहे तो बच्चेको झटक दे सकता है। इसमें कौन-से बड़े बलकी जरूरत है? झटका देनेमें देर भी कितनी लगेगी; पर स्नेह-सूत्रके जाल ऐसे हैं कि बलवान् भी उसमें फँस जाते हैं।'

एकनाथ महाराजकी शैलीमें फैलाव काफी रहता है, तुकारामजीकी वाक्‌शैली सूत्र-जैसी चुस्त और साफ होती है। ज्ञानेश्वरी और नाथ-भागवतका अध्ययन तुकारामजीने बहुत अच्छी तरहसे किया। ज्ञानेश्वरीको नाथ-भागवत विशद करता है। इन दोनों ग्रन्थोंका जिसने उत्तम अध्ययन किया हो वही तुकारामजीके सूत्ररूप वचनोंकी गुत्थियोंको सुलझा सकता है। उदाहरणके तौरपर यह अभङ्ग लीजिये—

गोदेकाठीं होता आड । करुनी कोडकवतुक ॥ १ ॥
देखण्यानीं एक केलें । आइत्या नेलें जिवनापें ॥ध्रु० ॥
राखोनियां होतो ठाव । अल्प जीव लावूनी ॥ २ ॥
तुका म्हणे फिटे धणी । हे सज्जनीं विश्रांती ॥ ३ ॥

गोदावरीके किनारे एक कुआँ था। बरसातके जलसे लबालब भरा था और अपनी शानमें मस्त था। मैं भी वहाँ अपने जरा-से प्राणको लिये, जगह दबाये बैठा था, पर देखनेवालोंने एक उपकार किया। वे मुझे नदीके बहते जलमें ले गये, वहाँ मेरी तृप्ति हुई। यह विश्राम सत्सङ्गसे ही मिला।

इतनेसे पूर्ण अर्थ-बोध नहीं होता। देखनेवालोंने उपकार किया। ये देखनेवाले कौन हैं? 'गोदावरी' कौन हैं और यह कुआँ क्या है? देखनेवाले सन्त हैं, ये ही नदीके बहते जलमें ले गये। यह इन्होंने बड़ा 'उपकार' किया। इस उपकारकी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये यह अभङ्ग रचा गया है। यह सन्तपरक है। संसार-सागरको पार करनेके अनेक उपाय हैं। उनमें मुख्य ज्ञान और भक्ति हैं। भक्ति-मार्ग स्पष्ट, निर्विघ्न और नित्य-निर्मल है; ज्ञान-मार्ग मध्यम और कलाहीन है। भक्ति-मार्ग ही गोदावरी अखण्डप्रवाह कलकल-नादिनी नदी है और ज्ञान-मार्ग ही 'कुआँ' है। नाथ-भागवतके ११ वें अध्यायमें ४८वें श्लोकपर नाथ महाराजका जो भाष्य है उसमें इस अभङ्गका मूल है।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव।
नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम्॥

इसी श्लोकपर वह भाष्य है। श्लोकका भाव यह है कि 'सत्सङ्गसे मिलनेवाले भक्तियोगके बिना भगवत्-प्राप्तिका अन्य उत्तम उपाय प्रायः नहीं है। कारण, सन्तोंका उत्तम आश्रय मैं ही हूँ।' यह भगवद्वचन है, इसपर नाथ-भाष्य इस प्रकार है—

'खेतमें पानी देना हो तो मोट और पाट दो ही उपाय हैं। मोटसे कुएँमेंसे पानी निकालो तो बहुत कष्ट करनेपर थोड़ा ही पानी मिलता है। फिर मोटके साथ रस्सा और एक जोड़ी बैल भी चाहिये। फिर बराबर 'ना' 'ना' करते बैलोंको ठोंकते-पीटते, खींच-खाँच करते पानी निकालो तो उससे थोड़ी ही जमीन भीगेगी, पर नदीके पाटकी यह बात नहीं है। जहाँ उसके जल-प्रवाहके आनेके

लिये रास्ता बन गया वहाँ रात-दिन घड़घड़ाता हुआ जल बहता ही रहेगा।' (१५३१-३२,३४)

यह मोटसे पानी निकलना ही ज्ञान-मार्ग है—

मोटेचें पाणी तेसें ज्ञान। करूनि वेदशास्त्रपठण।
नित्यानित्यविवेकासी जाण। पंडित विचक्षण बसती॥ १५३५॥

'मोटसे पानी निकालना जैसा है, वैसा ही ज्ञान है। वेद और शास्त्र पढ़कर ये विचक्षण पण्डित नित्यानित्यविवेक करने बैठते हैं, तब क्या होता है?'

'एक कर्माकडे ओढी। एक संन्यासाकडे ओढी॥'

'एक कर्मकी ओर खींचता है, दूसरा संन्यासकी ओर।' कोई तप बतलाता है, कोई पुरश्चरण, कोई वेदाध्ययन, कोई दान और कोई योग बतलाता है। जिसकी मतिमें जो आया उसीको उसने ज्ञानका सार बतलाया।

'ज्ञान-मार्गकी ऐसी गति होती है। अनेक प्रकारके विघ्न आते हैं। विकल्प-व्युत्पत्ति उड़ जाती है। वहाँ मेरी 'निजप्राप्ति' नहीं होती।' (१५४१)

'पर मेरी भक्तिकी यह बात नहीं है। नाममात्रसे (मेरे भक्त) मुझे पाते हैं।' (१५४२)

* * * *

गङ्गा-प्रवाह-जैसी हरि नामकी घड़घड़ाहटमें विघ्न बेचारोंके लिये कोई ठौर-ठिकाना नहीं रहता। इसलिये 'भक्तिसे बढ़कर और कोई मार्ग नहीं है।'

यदि ऐसा है तो सब लोग भक्ति क्यों नहीं करते? इसका उत्तर यह है। 'यदि कोटि जन्मोंकी पुण्य-सम्पत्ति गाँठमें हो तो मेरे सन्तोंकी सङ्गति मिलती है और सत्सङ्गतिसे ही भक्ति उल्लसित होती है।' (१५५१)

अस्तु, एकनाथ महाराजकी इन ओवियोंके भाव जब अन्तःकरणमें भरे हुए थे उसी समय तुकारामजीके चित्तमें यह अभङ्ग स्फुरित हुआ होगा, यह बात बिलकुल स्पष्ट है। ग्रन्थाध्ययन तथा अन्य साधनोंसे प्राप्त होनेवाले ज्ञानके भरोसे जब मैं बैठा हुआ था तब सन्तोंने दया करके मुझे परमात्माकी भक्तिरूप महागङ्गामें लाकर छोड़ दिया। यही बात तुकारामजीको अपने अभङ्गमें कहनी थी। तुकारामजीने एकनाथ महाराजको **'जीके मेरे जीवन एक जनार्दन'** कहकर कई स्थानोंमें स्मरण करके उनका 'वाक्ऋण' शोध किया है।

१७-नामदेवके अभङ्ग

अब नामदेवकी ओर चलें। नामदेवके अभङ्गोंकी 'गाथा' सुव्यवस्थितरूपसे छपी नहीं है इसलिये, तथा तुकारामजी नामदेवके ही अवतार थे इसलिये भी उनका सम्बन्ध अवतरण देकर दिखानेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। जिन-जिन विषयोंपर नामदेवके अभङ्ग हैं प्राय: उन सभी विषयोंपर तुकारामजीके भी अभङ्ग हैं। नामदेवजीकी सगुण भक्ति अत्युत्कट हार्दिक प्रेमसे भरी हुई है, उनकी मधुर भक्ति मधुरतम है। इस सम्बन्धमें नामदेव-जैसे नामदेव ही हैं। नामदेव अपने घरके सब लोगोंसहित, दासी जनाके भी सहित सर्वथा पाण्डुरङ्गके हैं और भगवान्‌से उनकी अर्जुनकी-सी सख्यभक्ति है। नामदेवके घरके आदमी जैसे ही भगवान् उनके साथ रात-दिन रहनेवाले, खेलनेवाले, बोलनेवाले, प्रेम-कलह करनेवाले घरके ही आदमी बन गये हैं। '**मैंने पाया निज मर्म। साधू भागवत धर्म**' इसीके लिये नामदेवका अवतार हुआ था। नामदेव इस युगके उद्धव ही थे। भगवान्‌के साथ इनकी बड़े प्रेमकी घुल-घुलकर बातें हुआ करती थीं '**अरी मेरी माई संतनकी छाँई। सुमिरत पनहाई प्रेमामृत।**' इत्यादि कहते हुए वह भगवान्‌से बड़े ही मीठे लाड़ लड़ाते थे और भगवान् भी अपना षड्गुणैश्वर्य भूलकर उनके प्रेममें पग जाते थे। भक्त-भगवान्‌की वह प्रेम सरस कोमलता नामदेवकी ही वाणीसे जाननी चाहिये। नामदेव भगवान्‌से कहते हैं कि तुम पक्षिणी हो, मैं अण्डज हूँ; तुम मृगी हो, मैं मृगछौना हूँ; तुम मैया हो, मैं बच्चा हूँ; तुम कृष्ण हो, मैं रुक्मिणी हूँ; तुम समुद्र हो, मैं द्वारका हूँ; तुम तुलसी हो, मैं मञ्जरी हूँ। भगवान्‌के साथ नामदेवका ऐसा विलक्षण सख्य था। यह देखकर तथा मृदुतामें नवनीतको मात करनेवाली उनकी मधुर वाणी सुनकर पाषाण भी अपना जडत्व छोड़कर द्रवित हो जाय। बाकी सब बातोंमें नामदेवजीके ही संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण तुकारामजी थे। तुकारामजीकी वाणीमें भगवद्भक्त, लोकोद्धारक महापुरुषकी जो दिव्य स्फूर्ति, जो ठसक, जो प्रखरता और जो ओज भरा है, वह अलौकिक ही है। पर यहाँ हमें नामदेव-तुकारामकी परस्पर तुलना नहीं करनी है। नामदेव ही तुकारामके रूपमें धर्म-कार्यार्थ अवतरित हुए, इसलिये नामदेवका जो बड़ा काम बाकी था वही तुकारामजीने किया, यही कहना उचित है। दोनोंके अभंगोंमें जो साम्य है, उसका अब किञ्चित् अवलोकन करें। कई चरण दोनोंके

अभंगोंमें बिलकुल एक-से हैं, जैसे '**देवावीण ओस स्थळ नाहीं**' यह नामदेवका चरण है, और तुकारामजीने कहा है, '**देवाबीण ठाव रिता कोठें आहे ?**' दोनोंका मतलब एक ही है अर्थात् 'भगवान्‌से खाली कोई स्थान नहीं।' एकाध शब्दका हेर-फेर है, पर एक सामान्य कथन है और दूसरा प्रश्नरूपमें है। नामदेवका चरण है, '**पंढरीच्या सुखा। अंतपार नाहीं लेखा।**' तुकारामजीका समचरण है, '**गोकुळीच्या सुखा अंतपार नाहीं देखा।**' नामदेव कहते हैं, '**वीतभर पोट लागलेंसे पाठीं**' (बित्ताभर पेट पीठसे जा लगा है)' और तुकाराम कहते हैं, '**पोट लागलें पाठीशीं। हिंडवितें देशोदेशीं**' (पेट पीठसे लगा है और देश-देश घुमा रहा है), 'झूठ' पर दोनोंके चार-चार अभङ्ग हैं। नामदेवने भक्तिकी उत्कटतासे सारा झूठ स्वयं ही ओढ़ लिया है। कहते हैं, 'मेरा गाना झूठा, मेरा नाचना झूठा, मेरा ज्ञान झूठा और ध्यान भी झूठा।' और तुकारामजी कहते हैं, '**लटिकें तें ज्ञान लटिकें तें ध्यान। जरी हरि-कीर्तन प्रिय नाहीं॥**' (वह ज्ञान झूठा और वह ध्यान भी झूठा जो हरि-कीर्तन-प्रिय न हो।) तुकारामजीने झूठ स्वयं नहीं ओढ़ा है, झूठोंके पल्ले बाँध दिया है।

(१) नामदेवके एक अभंगका आशय है—'हम पण्ढरीमें थे, यह हमारी पुरातन पैतृक भूमि है। रानी रखुमाई हमारी माता और पाण्डुरङ्ग हमारे पिता हैं। (ध्रु०) पुण्डलीक हमारे भाई और चन्द्रभागा बहिन हैं नामा कहता है, अन्तमें घर अपना चन्द्रभागाके किनारे है।'

इसी आशयका तुकोबाका अभंग यों है—हमारी पैतृक भूमि पण्ढरी है, घर हमारा भीमा-तीरपर है। पाण्डुरंग हमारे पिता और रखुमाई हमारी माता हैं। (ध्रु०) भाई पुण्डलीक मुनि और बहिन चन्द्रभागा हैं। तुकाका यह पुरातन परम्परागत अधिकार है जो चरणोंके पास रहता हूँ।'

(२) भगवन्! मेरा मन अपने अधीन करके बिना दाम दिये स्वामित्व क्यों नहीं भोगते हो? मैं मुफ्तका नौकर तो मिला हूँ जो निरन्तर आपकी सेवा करनेके लिये उधार खाये बैठा हूँ। और तुम्हारे ऊपर कुछ भार भी तो नहीं रखता। (नामदेव)

इसी भावको, देखिये तुकारामजीने किस प्रकार व्यक्त किया है—

दान देकर लोग सेवक ढूँढ़ते हैं। हम तो बिना कुछ लिये ही सेवक बनना चाहते हैं।

(३) बड़े आदमीका लड़का यदि चीथड़ा ओढ़े तो सब लोग किसको हँसेंगे? तुम तो अविनाशी त्रिभुवनके राजा हो और तुम्हीं मेरे स्वामी हो। (नामदेव)

बड़ेका लड़का यदि दीन-दु:खी दिखायी दे तो हे भगवन्! लोग किसको हँसेंगे? लड़का चाहे गुणी न हो, स्वच्छतासे रहना भी न जानता हो तो भी उसका लालन-पालन तो करना ही होगा। (ध्रु०) तुका कहता है, वैसा ही मैं भी एक पतित हूँ, पर आपका मुद्राङ्कित हूँ। (तुकाराम)

(४) *भोगावरी आम्हीं घातला पाषाण।*
मरणा मरण आणियेलें॥
(विषयोंका भोग जला डाला सारा।
मृत्युको ही मारा, नि:संशय॥)

यह दोनों ही एक-एक अभंगका प्रथम चरण है। आगेके चरण दोनोंके एक-दूसरेसे भिन्न हैं।

(५) '**विठाई माउली वोरसोनी प्रेमपान्हा घाली**' ये शब्द-प्रयोग दोनोंके ही अभंगोंमें बार-बार आये हैं।

(६) '**तत्त्व पुसावया गेलों वेदज्ञासी**' (तत्त्व पूछने वेदज्ञके पास गये) यह नामदेवका अभंग और '**ज्ञानियाचे घरीं चोजवितां देव**' (ज्ञानीके यहाँ भगवान्‌को ढूँढ़ते) यह तुकारामजीका अभंग, दोनोंका ही एक ही आशय है। वेदज्ञ, शास्त्री, पण्डित, कथावाचक आदि सबको देखा पर तेरा प्रेमानन्द उनके पास नहीं है, इसलिये तेरे ही चरणोंको चित्तमें और तेरा ही नाम मुखमें धारण किया है। इन अभंगोंमें दोनोंका यही अनुभव व्यक्त हुआ है।

उत्तर भारतके सन्त-कवियोंमें कबीर साहबकी साखियोंका तुकारामजीको विशेष परिचय था। तुकारामजीने स्वयं भी उनके ढंगपर कुछ दोहे रचे हैं, तथा कुछ अन्त:प्रमाणोंसे भी यह बात स्पष्ट है।

(१) तुकारामजी एक अभंगमें कहते हैं—

धर्म भूताची ते दया। संत कारण ऐसिया॥
नव्हे माझें मत। साक्षी करूनि सांगे संत॥

'प्राणिमात्रपर दया करना ही धर्म है। यही सन्तका लक्षण है। यह मेरा मत नहीं। साक्षी करके सन्त ऐसा कहते हैं।'

अभंगोंमें बिलकुल एक-से हैं, जैसे '**देवावीण ओस स्थळ नाहीं**' यह नामदेवका चरण है, और तुकारामजीने कहा है, '**देवाबीण ठाव रिता कोठें आहे ?**' दोनोंका मतलब एक ही है अर्थात् 'भगवान्‌से खाली कोई स्थान नहीं।' एकाध शब्दका हेर-फेर है, पर एक सामान्य कथन है और दूसरा प्रश्नरूपमें है। नामदेवका चरण है, '**पंढरीच्या सुखा। अंतपार नाहीं लेखा।**' तुकारामजीका समचरण है, '**गोकुळीच्या सुखा अंतपार नाहीं देखा।**' नामदेव कहते हैं, '**वीतभर पोट लागलेंसे पाठीं**' (बित्ताभर पेट पीठसे जा लगा है)' और तुकाराम कहते हैं, '**पोट लागलें पाठीशीं। हिंडवितें देशोदेशीं**' (पेट पीठसे लगा है और देश-देश घुमा रहा है), 'झूठ' पर दोनोंके चार-चार अभङ्ग हैं। नामदेवने भक्तिकी उत्कटतासे सारा झूठ स्वयं ही ओढ़ लिया है। कहते हैं, 'मेरा गाना झूठा, मेरा नाचना झूठा, मेरा ज्ञान झूठा और ध्यान भी झूठा।' और तुकारामजी कहते हैं, '**लटिकें तें ज्ञान लटिकें तें ध्यान। जरी हरि-कीर्तन प्रिय नाहीं॥**' (वह ज्ञान झूठा और वह ध्यान भी झूठा जो हरि-कीर्तन-प्रिय न हो।) तुकारामजीने झूठ स्वयं नहीं ओढ़ा है, झूठोंके पल्ले बाँध दिया है।

(१) नामदेवके एक अभंगका आशय है—'हम पण्ढरीमें थे, यह हमारी पुरातन पैतृक भूमि है। रानी रखुमाई हमारी माता और पाण्डुरङ्ग हमारे पिता हैं। (ध्रु०) पुण्डलीक हमारे भाई और चन्द्रभागा बहिन हैं नामा कहता है, अन्तमें घर अपना चन्द्रभागाके किनारे है।'

इसी आशयका तुकोबाका अभंग यों है—हमारी पैतृक भूमि पण्ढरी है, घर हमारा भीमा-तीरपर है। पाण्डुरंग हमारे पिता और रखुमाई हमारी माता हैं। (ध्रु०) भाई पुण्डलीक मुनि और बहिन चन्द्रभागा हैं। तुकाका यह पुरातन परम्परागत अधिकार है जो चरणोंके पास रहता हूँ।'

(२) भगवन्! मेरा मन अपने अधीन करके बिना दाम दिये स्वामित्व क्यों नहीं भोगते हो? मैं मुफ्तका नौकर तो मिला हूँ जो निरन्तर आपकी सेवा करनेके लिये उधार खाये बैठा हूँ। और तुम्हारे ऊपर कुछ भार भी तो नहीं रखता। (नामदेव)

इसी भावको, देखिये तुकारामजीने किस प्रकार व्यक्त किया है—

दान देकर लोग सेवक ढूँढ़ते हैं। हम तो बिना कुछ लिये ही सेवक बनना चाहते हैं।

(३) बड़े आदमीका लड़का यदि चीथड़ा ओढ़े तो सब लोग किसको हँसेंगे? तुम तो अविनाशी त्रिभुवनके राजा हो और तुम्हीं मेरे स्वामी हो। (नामदेव)

बड़ेका लड़का यदि दीन-दु:खी दिखायी दे तो हे भगवन्! लोग किसको हँसेंगे? लड़का चाहे गुणी न हो, स्वच्छतासे रहना भी न जानता हो तो भी उसका लालन-पालन तो करना ही होगा। (ध्रु०) तुका कहता है, वैसा ही मैं भी एक पतित हूँ, पर आपका मुद्राङ्कित हूँ। (तुकाराम)

(४) *भोगावरी आम्हीं घातला पाषाण।*
मरणा मरण आणियेलें॥
(विषयोंका भोग जला डाला सारा।
मृत्युको ही मारा, नि:संशय॥)

यह दोनों ही एक-एक अभंगका प्रथम चरण है। आगेके चरण दोनोंके एक-दूसरेसे भिन्न हैं।

(५) '**विठाई माउली वोरसोनी प्रेमपान्हा घाली**' ये शब्द-प्रयोग दोनोंके ही अभंगोंमें बार-बार आये हैं।

(६) '**तत्त्व पुसावया गेलों वेदज्ञासी**' (तत्त्व पूछने वेदज्ञके पास गये) यह नामदेवका अभंग और '**ज्ञानियाचे घरीं चोजवितां देव**' (ज्ञानीके यहाँ भगवान्को ढूँढ़ते) यह तुकारामजीका अभंग, दोनोंका ही एक ही आशय है। वेदज्ञ, शास्त्री, पण्डित, कथावाचक आदि सबको देखा पर तेरा प्रेमानन्द उनके पास नहीं है, इसलिये तेरे ही चरणोंको चित्तमें और तेरा ही नाम मुखमें धारण किया है। इन अभंगोंमें दोनोंका यही अनुभव व्यक्त हुआ है।

उत्तर भारतके सन्त-कवियोंमें कबीर साहबकी साखियोंका तुकारामजीको विशेष परिचय था। तुकारामजीने स्वयं भी उनके ढंगपर कुछ दोहे रचे हैं, तथा कुछ अन्त:प्रमाणोंसे भी यह बात स्पष्ट है।

(१) तुकारामजी एक अभंगमें कहते हैं—

धर्म भूताची ते दया। संत कारण ऐसिया॥
नव्हे माझें मत। साक्षी करूनि सांगे संत॥

'प्राणिमात्रपर दया करना ही धर्म है। यही सन्तका लक्षण है। यह मेरा मत नहीं। साक्षी करके सन्त ऐसा कहते हैं।'

यह कौन सन्त हैं जिन्होंने 'साक्षी' करके 'प्राणिमात्रपर दया करनेको 'धर्म' बताया है और इसीको 'सन्तका लक्षण' कहा जाता है? यह वही सन्त हो सकते हैं, जिनकी '**साखी आँखी ज्ञानकी**' है और जो सब जीवोंको '**साँईके सब जीव हैं**' बतलाते हैं, सन्तका लक्षण भी यही बतलाते हैं—

सदा कृपालु दुख पर हरन, वैर भाव नहिं दोय।
क्षमा ज्ञान सत भाखिये, हिंसारहित जो होय॥

(२) कबीर—

खाँड खिलौना दो नहीं, खाँड खिलौना एक।
तैसे सब जग देखिये, किये कबीर बिबेक॥

तुकाराम—

खडा खाळी साखर, जाला नामाचाचि फेर।
न दिसे अंतर, गोडी ठायीं निवडितां॥ १॥

'मिसरी, बूरा और चीनीमें नामोंका ही फेर है। मिठासको देखें तो कोई अन्तर नहीं।'

(३) कबीर—

कामीका गुरु कामिनी लोभीका गुरु दाम।
कबिराके गुरु संत हैं, संतनके गुरु राम॥

तुकाराम—

लोभीके चित धन रहे, कामिनी चितमें काम।
माताके चित पूत बसे, तूकाके मन राम॥

तुकारामजीके समयमें कबीर भारतवर्षमें सर्वत्र विख्यात थे। कबीर (शाके १३६२—१४४०) और तुकारामके बीच सौ-सवा सौ वर्षका अन्तर था। तुकारामजी एक बार काशी भी गये थे। तब वहाँ उन्होंने कबीरकी कविता सुनी होगी।

१९-चार खेलाड़ी

तुकारामजीके डण्डोंके खेलपर सात अभंग हैं। इनमेंसे एक अभंग है। '**खेळ खेळोनियाँ निराळे**' (खेल खेलकर अलग)। इसमें खेल खेलकर भी अलग रहे हुए—प्रपञ्चके दावमें न आये हुए चार खेलाड़ियोंका उन्होंने वर्णन

किया है। ये चार खेलाड़ी हैं–नामदेव, ज्ञानदेव (उनके भाई–बहिन), कबीर और एकनाथ। तुकाराम इन्हीं चार सन्तोंको सबसे अधिक याने गुरुस्थानीय मानते थे। ये ही इनके प्यारे चार खेलाड़ी हैं।

(१) एक खेलाड़ी है दरजीका लड़का नामा, उसने विट्ठलको मीर बनाया। खेला, पर कहीं चूका नहीं, सन्तोंसे उसे लाभ हुआ।

(२) ज्ञानदेव, मुक्ताबाई, वटेश्वर चाङ्गा और सोपान आनन्दसे खेले, कृष्णको उन्होंने मीर बनाया और उसके चारों ओर नाचे। सब मिलकर तन्मय होकर खेले, ब्रह्मादिने भी उनके पैर छुए।

(३) कबीर खेलाड़ीने रामको मीर बनाया और यह जोड़ी खूब मिली।

(४) एक खेलाड़ी है ब्राह्मणका लड़का एका, उसने लोगोंको खेलका चसका लगा दिया। जनार्दनको उसने मीर बनाया और वैष्णवोंका मेल कराया। तन्मय होकर खेलते–खेलते वह स्वयं ही मीर बन गया।

प्रत्येक खेलाड़ीका एक–एक मीर याने उपास्य था। इन चारोंके अतिरिक्त और भी बहुत–से खेलाड़ी हुए पर उनका वर्णन करनेमें तुकारामजी कहते हैं कि **'मेरी वाणी समर्थ नहीं है।'** पर तुकारामजी अपने श्रोताओंसे कहते हैं कि **'या चौघांची तरी धरि सोईरे'** (इन चारोंके पीछे–पीछे तो चलो)—नामदेव, ज्ञानेश्वर, कबीर और एकनाथका अनुसरण तो करो। इस अभंगका ध्रुवपद इस प्रकार है—

एके घाई खेलतां न पडसी डाई। दुचाळयानें ढकसिल भाई रे
त्रिगुणांचे फेरीं तुं थोर कष्टी होसी या चौघांची तरि धरि सोई रे

'एक भावसे खेल खेलोगे तो (प्रपञ्चके) दाँवमें न फँसोगे। दुविधासे चलोगे तो ठगे जाओगे। त्रिगुणके फेरसे तुम बड़े कष्ट उठाओगे, इसलिये इन चारोंका आश्रय कर इनके मार्गपर चलो।' तुकारामजी जिनके मार्गपर चलनेका उपदेश लोगोंको दे रहे हैं उनपर उनका वैसा ही अटल विश्वास, गहरा प्रेम और महान् आदर होगा इसमें सन्देह ही क्या है। ऐसा प्रेम और आदर होनेसे ही तुकारामजीने उनके ग्रन्थोंका बड़ी बारीकीके साथ अध्ययन किया, हमलोगोंने यहाँतक देखा ही है।

२०–अध्ययनका सार

भागवत–धर्म–परम्पराके प्राचीन तथा अर्वाचीन साधु–सन्तोंकी जो

कथाएँ तुकारामजीने पढ़ीं या सुनीं उनका तुकारामजीके चित्तपर बड़ा असर पड़ा। इनसे उनके सिद्धान्त दृढ़ हुए, विचार स्थिर हुए, हरि-प्रेम बढ़ा और जीवनकी एक पद्धति निश्चित हो गयी। सन्त-कथा-श्रवण, भक्ति-बल बढ़ा और विश्वास श्रीविट्ठलमें निर्मल निश्चल हुआ। सन्तोंका सहारा मिला। सन्त-कथाएँ कामधेनुके समान इष्टकामको पूरण करनेवाली, भगवत्-प्रेमका आनन्द बढ़ानेवाली, सन्मार्ग दिखानेवाली, निश्चयका बल देनेवाली और सिद्धान्तोंको जँचा देनेवाली होती हैं। सन्त-कथाओंसे तुकारामजीने अपना इष्टभाव निकाल लिया और लाभवान् हुए। शीलवान् साक्षात्कारप्राप्त तथा धर्म-नीति-प्रवण सन्तोंके चरित्रोंसे आत्महितके कौन-कौनसे रहस्य तुकारामजीने प्राप्त किये यह एक बार उन्हींके मुखसे सुनें—

(१) मानी भक्तीचे उपकार। ऋणिया म्हणवी निरंतर॥

'भगवान् भक्तिके उपकार मानते हैं, भक्तके ऋणी हो जाते हैं।' इस अभंगमें अम्बरीष, बलि, अर्जुन और पुण्डलीकके दृष्टान्त देकर यह बात सिद्ध की है। अम्बरीषके लिये भगवान्ने दस बार जन्म लेकर 'दासका दास्य किया।' भक्तिका उपकार उतारनेके लिये भगवान् राजा बलिके यहाँ द्वारपाल हुए। अर्जुनके सारथी बने। उसके पीछे-पीछे चले और पुण्डलीकके द्वारपर तो अट्ठाईस युगसे खड़े ही हैं।

(२) **'कनवालू कृपालू'**। भगवान् भक्तके लिये चाहे जो कष्ट उठाते हैं, यह बात अम्बरीष और प्रह्लादके चरित्रोंमें तथा दौपदी-वस्त्र-हरण और दुर्वासाके धर्म-छल-प्रसङ्गमें प्रत्यक्ष है।

(३) *हरिजनांची कोणा न घडावी निंदा।*
साहत गोविंदा नाहीं त्याचें॥

'हरि-भक्तोंकी कोई निन्दा न करे, गोविन्द उसे सह नहीं सकते। भक्तोंके लिये भगवान्का हृदय इतना कोमल होता है कि वह अपनी निन्दा सह सकते हैं पर भक्तकी निन्दा नहीं सह सकते। भक्तोंसे कोई छल-छद्म करे तो यह भी उनसे नहीं सहा जाता'—

'दुर्वासा अम्बरीषको छलने आये तो भगवान्का सुदर्शन-चक्र उनको जलाता फिरा। द्रौपदीको जब क्षोभ हुआ तब भगवान्ने उसकी सहायता की और

कौरवोंको ठण्डा ही कर दिया। पाण्डवोंसे वैर करनेवाला वभ्रु भगवान्‌से नहीं सहा गया और पाण्डवोंके लिये बलरामको भी उन्होंने दूर (पृथ्वी-परिक्रमा करने) भेज दिया। पाण्डव-पुत्रोंकी हत्या करनेवाले अश्वत्थामाके मस्तकमें उन्होंने दुर्गन्ध रख ही छोड़ी।' इसलिये भगवान्‌की भक्ति करो और भक्तोंको अपनाओ।

(४) *शुकसनकादिकी उभारिला बाहो।*
परीक्षिती लाहो सातां दिवसा॥

'शुक-सनकादि हाथ उठाकर कहते हैं कि परीक्षित् सात दिनमें तर गये।' भक्तोंपर भगवान्‌की ऐसी दया है। द्रौपदीने जब पुकारा तब भगवान् इतने अधीर हो उठे कि गरुड़को भी उन्होंने पीछे छोड़ दिया। भक्तके पुकारनेकी देर है, भगवान्‌के पधारनेकी नहीं। इसलिये रे मन, जल्दी कर।

'उठते-बैठते भगवान्‌को पुकार। पुकार सुननेपर भगवान्‌से फिर नहीं रहा जाता।'

(५) भगवान्‌के प्रेमकी महिमा सुनो। भीलनीके बेर वह खाते हैं, वह प्रेमके बड़े भूखे हैं, प्रेमका अभाव ही उनके लिये अकाल (दुर्भिक्ष) है। सुदामाके चावल वह ऐसे ही फाँक गये। उन्होंने भक्ति ग्रहण की।

(६) प्रह्लाद-कथाका स्मरण करके तुकारामजी कहते हैं—

'भक्तकी आवाज आते ही उछलकर कूद पड़े और खम्भेको तोड़कर बाहर निकले। ऐसी दयालु मेरी विठामाईके सिवा और कौन है ?'

(७) दीन-दुःखी पीड़ित संसारियोंके हे देवराणा! तुम्हीं तरफदार हो। महासङ्कटोंसे तुम्हींने प्रह्लादको अनेक प्रकारसे उबारा है।'

(८) '**माइया विठोबाचा कैसा प्रेम-भाव**' (मेरे विट्ठलनाथका कैसा प्रेम-भाव है) यह बतलाते हैं—

भगवान् भक्तके आगे-पीछे उसे सँभाले रहते हैं, उसपर जो कोई आघात होते हैं उनका निवारण करते रहते हैं, उसके योगक्षेमका सारा भार स्वयं वहन करते हैं और हाथ पकड़कर उसे रास्ता दिखाते हैं। तुका कहता है—'इन बातोंपर जिसे विश्वास न हो वह पुराणोंको आँख खोलकर देखे।'

(९) भगवान् जिन्हें अपनाते हैं वे संसारकी दृष्टिमें पहले निन्द्य भी रहे हों तो भी पीछे वन्द्य हो जाते हैं—

अंगीकार ज्यांचा, केला नारायणें। निंद्य तेही तेणे, वंद्य केले॥ १॥
अजामेळ भिल्ली, तारिली कुंटणी। प्रत्यक्ष पुराणीं वंद्य केली॥ध्रु०॥
ब्रह्महत्याराशी, पातकें अपार। वाल्मीक किंकर, वंद्य केला॥ २॥
तुका म्हणे येथें, भजन प्रमाण। काय थोरपण, जाळावें तें॥ ३॥

'नारायणने जिन्हें अङ्गीकार किया वे, जो निन्द्य भी थे, वन्द्य हो गये। भगवान्ने अजामिल, भीलनी और कुटनी तकको तारा और उन्हें साक्षात् पुराणोंमें वन्द्य किया। ब्रह्महत्याके राशि अपार पाप जिसने किये उस वाल्मीकि किङ्करको भगवान्ने वन्द्य किया। तुका कहता है, यहाँ भक्ति ही प्रमाण है और बड़प्पन लेकर क्या होगा।'

भगवान्का जो भक्त है वही यथार्थमें वन्द्य है और वही श्रेष्ठ है। भगवान्का अङ्गीकार करना ही वन्द्यताका प्रमाण है। ज्ञानदेवने भी कहा है, 'भगवद्भक्तिके बिना जो जीना है उसमें आग लगे। अन्तःकरणमें यदि हरि-प्रेम नहीं समाया तो कुल, जाति, वर्ण, रूप, विद्या इनका होना किस कामका? इनसे उलटे दम्भ ही बढ़ता है। अजामिल, कुटनी और वाल्मीकिका पूर्वाचरण और शबरीकी जाति निन्द्य थी, नारायणने इन्हें अङ्गीकार किया इसलिये ये जगद्वन्द्य हुए।

(१०) '**तुज करितां नव्हे ऐसें कांहीं नाहीं!**' मनुष्यकी पसंद कोई चीज नहीं है। भगवान्को जो पसंद हो वही शुभ है, वही वन्द्य है और वही उत्तम है।

नीति-शास्त्र संसारमें सुव्यवस्था बना रखनेके लिये नीतिके कुछ नियम बाँध देते हैं; पर अन्तिम निर्णयको देखें तो मूल-सूत्र भगवान्के ही हाथमें है! भगवान् जिसे अङ्गीकार करेंगे वही श्रेष्ठ और वन्द्य होगा। भगवान्की मुहर जिसपर लगेगी वही सिक्का दुनियामें चलेगा। भगवान्के दरबारका हुक्म ही दुनियामें चलता है।

भगवान्ने गीतामें स्वयं ही कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

यह सब धर्मोंका सार है। हरि-शरणागति ही सब शुभाशुभ कर्मबन्धोंसे मुक्त होनेका एकमात्र मार्ग है। जो शरणागत हुए वे ही तर गये। भगवान्ने उन्हें तारा, उन्हें तारते हुए भगवान्ने उनके अपराध नहीं देखे, उनकी जाति या कुलका

विचार नहीं किया। भगवान् केवल भावकी अनन्यता देखते हैं। अनन्य प्रेमकी गङ्गामें सब शुभाशुभ कर्म शुभ ही हो जाते हैं। भगवान् पूर्वकृत पापोंको क्षमा कर देते हैं और अनन्यता होनेपर तो कोई पाप हो ही नहीं सकता और इस प्रकार भक्त अनायास कर्म-बन्धसे मुक्त हो जाता है। अजामिल, गणिका, भीलनी, ध्रुव, उपमन्यु, गजेन्द्र, प्रह्लाद, पाण्डव इत्यादि सब भक्तोंको भगवान्ने उनके कुल, जाति और अपराधोंका विचार न करके तारा है।

'तुम्हारे नामने प्रह्लादकी अग्निमें रक्षा की, जलमें रक्षा की, विषको अमृत बना दिया। पाण्डवोंपर जब बड़ा भारी सङ्कट आया तब हे नारायण! तुम उनके सहायक हुए। तुका कहता है कि इस अनाथके नाथ तुम हो, यह सुनकर मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ।'

(११) भक्त भी ऐसे होते हैं कि भगवान् का अखण्ड स्मरण करते हैं—

पहा ते पांडव अखंड वनवासी ।
परि त्या देवासी आठविती ॥ १ ॥
प्रह्लादासी पिता करितो जाचणी ।
परि तो स्मरे मनीं नारायण ॥ २ ॥
सुदामा ब्राह्मण दरिद्रें पीडिला ।
नाहीं विसरला पांडुरंगा ॥ ३ ॥
तुका म्हणे तुझा न पडावा विसर ।
दुःखाचे डोंगर झाले तरी ॥ ४ ॥

'देखो पाण्डवोंको, अखण्ड वनवास भोग रहे हैं, पर भगवान्का स्मरण बराबर करते हैं। प्रह्लादको उसका पिता इतना कष्ट देता है पर प्रह्लाद मनसे नारायणका ही स्मरण करता है। सुदामा ब्राह्मणको दरिद्रताने पीस डाला पर उसने पाण्डुरंगको नहीं भुलाया। तुका कहता है, पर्वतप्राय दुःख हो तो भी तुम्हारा विस्मरण न हो।'

(१२) भगवान् भक्तपर दुःखके पहाड़ ढाहते हैं, उनकी घर-गिरहस्तीका सत्यानाश कर डालते हैं अर्थात् संसारके बन्धनोंसे छुड़ा लेते हैं।

विपदः सन्तु नः शश्वद्यासु सङ्कीर्त्यते हरिः।

इसी कुन्तीके वचनका ही अनुवाद तुकारामजीने 'हरि तू निष्ठुर निर्गुण'

अभंगमें किया है और उसमें हरिश्चन्द्र, नल, शिवि, कर्ण, बलि, श्रियाल आदि सुप्रसिद्ध भक्तोंके हृदयद्रावक दृष्टान्त दिये हैं।

(१३) *तुज भावें जे भजति। त्यांच्या संसारा हे गति॥*

'जो भक्तिपूर्वक तेरा भजन करते हैं उनके प्रपञ्चकी यही गति होती है।' पर भक्त भी पीछे हटनेवाले नहीं हैं, अनन्य शरणागतिसे वे बाल-बराबर भी इधर-उधर नहीं होते। इसीलिये—

'वैष्णवोंकी कीर्ति पुराणोंने गायी है—आदिनाथ शङ्कर, नारद-से मुनीश्वर, शुक-जैसे महान् अवधूत और कोई नहीं हैं। तुका कहता है, यह आर्तोंकी विश्रान्ति और सर्वश्रेष्ठ हरि-भक्ति है।'

(१४) 'नारायणीं जेणें घडे अंतराय' (नारायण जिनके कारण छूटते हैं) ऐसे माँ-बापको भी भक्त भगवान्‌के लिये छोड़ देते हैं, फिर स्त्री-पुत्र, धन-मान किस गिनतीमें हैं? प्रह्लादने पिताको छोड़ा, विभीषणने भाईका त्याग किया और भरतने माता और राज्य दोनोंको तज दिया। भगवान्‌के भक्त ऐसे त्यागी, विरक्त और एकनिष्ठ होते हैं।

(१५) *न मनावें तैसें गुरुचें वचन। जेणें नारायण अंतर तें॥*

'गुरुका भी ऐसा वचन न माने, जिससे नारायणका विछोह हो' यही बात दिखलानेके लिये तुकारामजीने तीन बड़े मार्मिक उदाहरण दिये हैं—एक राजा बलिका, दूसरा ऋषि-पत्नियोंका और तीसरा गोपियोंका।

'शुक्राचार्य भगवद्भक्तिमें बाधक होने लगे इसलिये राजा बलिने उनकी एक आँख फोड़ डाली और अपने गुरुको एक आँखसे अन्धा कर दिया। ऋषि-पत्नियोंने ऋषियोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया और अन्न उठाकर ले गयीं।

विधि-नियम, शास्त्राचार और नीति-बन्धन इन सबका पालन अत्यावश्यक है, यह बात तुकारामजी किसीसे कम नहीं जानते थे। उन्होंने इन बन्धनोंको तोड़नेवाले दुराचारियों और दाम्भिकोंको बहुत बुरी तरहसे फटकारा है! विषय-सुखके लिये, आचार-धर्मका उल्लङ्घन करनेवालोंके लिये नरककी ही गति है इसमें सन्देह ही क्या है? पर '**सतां गतिः**' स्वरूप परमात्माकी प्राप्तिके लिये सर्वत्र न्योछावर करना पड़ता है, यह भक्ति-शास्त्रका सिद्धान्त है। भक्ति-शास्त्रकी दृष्टिसे धर्माधर्म-विवेक तुकारामजी इस प्रकार बतलाते हैं—

देव जोडे ते करावे अधर्म। अंतरे तें कर्म नाचरावें॥ १०॥

'जिससे भगवान् मिलें वह (लोक-दृष्टिमें) अधर्म भी हो तो करे; जिससे भगवान् छूट जायँ वह कर्म न करे।'

बलि, ऋषि-पत्नी और गोपियोंकी अनन्य भक्तिपर भगवान् मुग्ध हो गये, अनन्य-प्रेमके वशमें हो गये, और इन भक्तप्रेमियोंके हाथों लोकदृष्टिमें अधर्म हुआ तो भी भगवान्ने उन्हें अनन्य भक्तिके कारण 'वह दिया जो और किसीको न दिया।' 'अन्दर-बाहर सम्पूर्ण वही हो गया!'

(१६) भगवत्-प्राप्तिका मुख्य साधन नाम-स्मरण है। नाम-स्मरणसे असंख्य भक्त तर गये। तुकारामजीने अपने अनेक अभंगोंमें इनके उदाहरण दिये हैं। एक अभंगमें आदिनाथ शङ्कर, अखिल भक्त-गुरु नारद, महाकवि वाल्मीकि, सात दिनमें हरि-गुण-नाम-संकीर्तनसे सद्गति पाये हुए परीक्षित् तथा एक दूसरे अभंगमें उपमन्यु, गणिका और प्रह्लादके नाम आये हैं।

(१७) 'भक्तोंके लिये हे भगवन्! आपके हृदयमें बड़ी करुणा है, यह बात हे विश्वम्भर! अब मेरी समझमें आ गयी। एक पक्षीका नाम रखा जो आपका नाम था और इससे गणिकाका उद्धार हुआ। कुटनीने बड़े दोष किये, पर नाम लेते ही आपको करुणा आ गयी। तुका कहता है, हे कोमलहृदय पाण्डुरंग! आपकी दया असीम है।'

(१८) कालरूप हौएसे डरे हुए जीवोंके पुकारते ही भगवान् कैसे दौड़े आते हैं। यह दिखानेके लिये जनक, राजा शिवि, गणिका, अजामिलके उदाहरण दिये हैं।

(१९) 'भक्तोंके यहाँ भगवान् अपने तनसे काम करते हैं। धर्माके यहाँ जूठन उठाते हैं। भीलनीके जूठे फल खाते हैं और ये उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। क्या भगवान्को अपने घर खानेको नहीं मिलता जो द्रौपदीसे सागकी पत्ती माँगते हैं? इन्होंने अर्जुनके घोड़ोंको नहलाया, अर्जुनके कितने सङ्कट निवारण किये। तुका कहता है, ऐसे भक्त ही भगवान्के प्यारे हैं। कोरे ज्ञानका तो, मुँह काला!'

इन पुराणोक्त भक्तजनोंके समान ही आधुनिक भागवत भक्तोंकी कथाएँ भी तुकारामजीको अत्यन्त प्रिय थीं और इनकी कथाओंसे भी तुकारामजीने यही तात्पर्य निकाला कि नाम-स्मरण-भक्ति ही सब साधनोंसे श्रेष्ठ है। तुकाराम

महाराजके पूर्व महाराष्ट्रमें जो-जो सन्त भगवद्भक्त हुए उन सबके बारेमें तुकारामजीने अनेक बार प्रेमोद्‌गार निकाले हैं। ऐसे अनेक भक्तोंके नाम 'मङ्गलाचरण' में दिये हुए १२ वें अभंगमें आये हैं और तुकारामजीने यह कहकर ये नाम लिये हैं कि मेरा गोत्र बहुत बड़ा है, उसमें सभी सन्त और महन्त हैं और मैं उनका नित्य स्मरण करता हूँ।

(२०) *पवित्र तें कुळ पावन तो देश।*
जेथें हरिचे दास जन्म घेती॥ १॥

'वह कुल पवित्र है, वह देश पावन है जहाँ हरिके दास जन्म लेते हैं।' वर्णाभिमानसे कोई पावन नहीं हुआ और कनिष्ठ जातियोंमें भी साधु-महात्मा हुए हैं। तुकारामजी कहते हैं—

'अन्त्यजादि भी हरि-भजनसे तर गये, पुराण उनके भाट बन गये। तुलाधार वैश्य था, गोरा कुम्हार था, धागा और रैदास चमार थे। कबीर जुलाहा था, लतीफ मुसलमान था, विष्णुदास सेनानाई था, कान्हूपात्रा वेश्या थी, दाहू धुनिया था, पर भगवान्‌के चरणोंमें—भगवद्भजनमें कोई भेद नहीं। चोखामेला और बङ्का महार थे, पर सर्वेश्वके साथ उनका मेल था। नामाकी दासी जनाकी कैसी भक्ति थी कि पण्ढरिनाथ उसके साथ भोजन करते थे। मैराल जनकका कुल क्या श्रेष्ठ था? पर उसकी भक्ति-महिमाका बखान कहाँतक करूँ?' तात्पर्य यह है कि 'विष्णुदासोंके लिये जात-कुजात नहीं हैं, यह वेद-शास्त्रोंका निर्णय है। तुका कहता है, आपलोग ग्रन्थोंमें देखिये, कितने पतित तर गये जिनकी कोई संख्या नहीं।'

(२१) भगवान् भावके भूखे हैं, ऊँच-नीच भेद उनके यहाँ नहीं है—

'भगवान् ऊँच-नीच नहीं देखा करते, भक्ति जहाँ देखते हैं वहीं ठहर जाते हैं। दासी-पुत्र विदुरके यहाँ उन्होंने चावलकी कनियाँ खायीं, दैत्यके यहाँ रहकर प्रह्लादकी रक्षा की। कबीरसे छिपकर उनके वस्त्र बुन दिया करते थे। साँवता मालीके साथ खुरपेसे खुरपते थे। नरहरि सुनारके यहाँ सुनारी करते थे। नामाकी जनाके साथ गोबर बटोरते थे और घर्माके यहाँ झाड़ते-बुहारते और पानी भरते थे। नामाके साथ निःसङ्कोच होकर भोजन करते और ज्ञानदेवकी भीत खींचते थे। सारथी बनकर अर्जुनके घोड़े हाँके और प्रेमसे सुदामाके चावल खाये। ग्वालोंके यहाँ स्वयं ही गौएँ चरायीं और बलिके द्वार पहरा दिये। एकनाथका

ऋण पटाया और अम्बरीषके लिये गर्भवास भोगा। मीराबाईके लिये विषका प्याला पी गये और दामाजीका देन भरा। गोरा कुम्हारके मटके बनाये, मट्टी ढोयी और नरसी मेहताकी हुण्डी सकारी। और पुण्डलीकके लिये तो भगवान् अभीतक खड़े ही हैं। उनकी लीला धन्य है।'

(२२) '**भक्तऋणी देव बोलती पुराणें**' (पुराण कहते हैं कि भगवान् भक्तोंके ऋणी हैं)। पुराणोंका यह वचन कैसे सत्य है, यह बतलाते हुए तुकारामजीने कबीर, नामदेव, एकनाथ और भानुदासके दृष्टान्त दिये हैं। कबीर एक नया बुना हुआ कपड़ा बेचनेके लिये बाजार चले। रास्तेमें एक दीन याचक मिला; आधा वस्त्र फाड़कर उन्होंने उसे दे दिया। पीछे एक ब्राह्मण मिले (जो ब्राह्मणवेषधारी भगवान् ही थे), आधा वस्त्र कबीरने उन्हें दे डाला और खाली हाथ घर लौटे। भगवान्ने उस वस्त्रका मूल्य कबीरको देना चाहा पर कबीरने उसे नहीं लिया।

नामदेवके पास जितना कपड़ा था वह उन्होंने रास्तेके पत्थरोंको भगवान् जानकर बाँट दिया तब भी ऐसी ही बात हुई थी।

एकनाथकी बात तो तुकारामजी कहते हैं कि 'प्रत्यक्ष ही है' कि आलन्दीमें तीन मास बराबर वारकरी भक्तोंको एकनाथ खिलाते-पिलाते रहे, इससे उनपर ऋण हो गया, उसे भगवान्ने ही उतारा।

भानुदासने खेतमें बोनेके लिये जो बीज रख छोड़ा था उसीको पीसकर उन्होंने सन्तोंको खिला दिया, तब भगवान्को स्वयं ही उनके खेतकी बोवाई करनी पड़ी।

भक्त संसारमें विख्यात हों और उनके द्वारा जड़ जीवोंका उद्धार हो इसके लिये भगवान्ने अनेक अद्भुत लीलाएँ दिखाकर भक्तोंके काम किये हैं।

'नामदेवके लिये भगवान्ने अपना देवालय घुमा दिया, भगवान्ने उनके हाथों दुग्ध-पान किया; इससे नामदेव जगत्में विख्यात हुए। नरसी मेहताकी हुण्डी सकारी। धना जाटके खेत बो दिये। मीराबाईके लिये विषपान किया। लाखा कोलाटका ढोल पीटा। कबीरके कपड़े बुन दिये। कुम्हारके बच्चेको जिला दिया। अब तुका आपके चरणोंमें बार-बार विनती करता है कि हे पण्ढरिनाथ! मुझपर भी दया करो।'

२१-उपसंहार

यह प्रकरण बहुत बढ़ गया। परन्तु तुकारामजीके अध्ययनका यथार्थ स्वरूप हर पहलूसे पाठकोंके ध्यानमें आ जाय इसीके लिये इतना विस्तार किया है। इससे नये और पुराने दोनों प्रकारके विचारवालोंको अपने कुछ विचार बदलने पड़ेंगे। पुराने विचारके अनेक लोगोंकी यह धारणा थी कि तुकारामजीको ग्रन्थ पढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, उन्होंने कोई ग्रन्थ पढ़े भी नहीं, इतना ही नहीं बल्कि वह लिखना-पढ़ना भी नहीं जानते थे। पर यह धारणा गलत है, यह बात उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट हो गयी होगी और सबके ध्यानमें यह बात आ गयी होगी कि तुकारामजी केवल लिखना-पढ़ना जानते थे, बल्कि उन्होंने गीता-भागवतादि संस्कृत-ग्रन्थों तथा ज्ञानेश्वरी-नाथ भागवतादि प्राकृत ग्रन्थोंका बड़ी आस्था और सूक्ष्मताके साथ अध्ययन किया था, कुछ थोड़े-से ही ग्रन्थ उन्होंने देखे पर बहुत अच्छी तरहसे देखे। इस विषयमें भी अब किसीको कोई सन्देह नहीं रह जायगा कि भागवत-जैसे ग्रन्थोंको पढते-पढ़ते उन्हें संस्कृत-भाषाका इतना बोध हो गया था कि वह भागवतके श्लोकोंका भावार्थ अनायास समझ लेते थे। 'पुराण देखे, दर्शन ढूँढ़े' यह उन्हींका कथन है और इससे यह पता चलता है कि उनका अध्ययन कितनी उच्च कोटिका था। उस जमानेमें भी तुकाराम-जैसे शूद्रको समाजसे ऐसा अध्ययन करनेका अवसर मिलता था और तुकाराम-जैसे प्रज्ञावान् पुरुष उससे लाभ उठाते थे। इस बातको देखते हुए भी जो लोग यह कहा करते हैं कि हिंदू-समाजने स्त्री, शूद्रादिको जान-बूझकर अज्ञानमें ही रखा, उनका यह कहना केवल मिथ्या प्रलाप है।* इसी प्रकार तुकाराम महाराजकी शिष्या

---

* तुकारामजीके पूर्व संवत् १६२१ में शिङ्गणापुरके कवि महालिङ्गदासने 'विक्रमबतीसी' नामका एक बड़ा ओवीबद्ध ग्रन्थ लिखा जो २० वर्ष पहले मैं देख चुका हूँ। संवत् १७५५ में अवचितसुत काशीने 'द्रौपदी-स्वयंवर' नामक ग्रन्थ लिखा जो प्रसिद्ध ही है। ये दोनों लेखक शूद्र थे।

[शूद्रोंको या स्त्रियोंको ज्ञान प्राप्त न हो यह लक्ष्य तो हिन्दू-समाजका कभी नहीं था, प्रत्युत अपने-अपने कर्मको करते हुए सब परमज्ञानको प्राप्त करें यही हिन्दू-समाजका प्रधान लक्ष्य रहा है।—भाषान्तरकार]

बहिणाबाई, समर्थ रामदास स्वामीकी शिष्याएँ आक्का और वेणू, ज्ञानेश्वरकालीन मुक्ताबाई और जनाबाई आदिके शिक्षा, अध्ययन और ग्रन्थकर्तृत्वको देखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि हिन्दू-समाजने स्त्रियोंके मानसिक उत्कर्षकी ओर ध्यान नहीं दिया? ज्ञानस्रोतस्वतीसे ज्ञानामृत लेकर पान करनेका अधिकार सबको सभी समय है। परन्तु ज्ञानगङ्गोदक पान करनेकी इच्छा और अवसर सभीको नहीं होता, इस कारण क्या ब्राह्मण और क्या शूद्र सभी जातियोंपर अविद्याका प्रभाव ही अधिक पड़ा हुआ सर्वत्र दिखायी देता है। अस्तु।

तुकारामजीकी साक्षरता और अध्ययनके विषयमें पुराने विचारके लोगोंकी जैसी एक भ्रान्त धारणा थी वैसी उन आधुनिक विद्वानोंकी मति भी ठीक नहीं है जो तुकारामजीको ज्ञानेश्वर और एकनाथकी परम्परासे अलग कराना चाहते हैं। ज्ञानेश्वर और एकनाथकी वाक्तरङ्गिणीमें तुकाराम किस चावसे डुबकियाँ लगाते थे यह हमलोग देख चुके हैं। कोई भी ग्रन्थकार अपने पूर्वजोंसे प्राप्त सञ्चित धनको सुरक्षित रखकर ही उसकी वृद्धि करता है। इससे किसीकी प्रतिष्ठामें कोई बाधा नहीं पड़ती। बाप-दादोंसे मिली हुई सम्पत्तिको अपने अधिकारमें करके उसे भोगते हुए और बढ़ाना सत्पुत्रोंका तो काम ही है। ज्ञानेश्वर महाराजने व्यासदेवग्रथित गीताको ग्रहण कर उसे अपनी प्रतिभाके आभूषण पहनाये। एकनाथ महाराजने ज्ञानेश्वरी और भागवतको आत्मसात् करके उनसे अपनी वाणी रञ्जित की और तुकाराम महाराजने ज्ञानेश्वर-एकनाथद्वारा निर्मित रत्नोंकी खानिका स्वत्वाधिकार प्राप्त किया और उनसे अपने अभंगोंके हीरे निकालकर उनसे संसारको चकित कर दिया। यह क्रम अनादिकालसे चला आया है और ऐसे विजयवीर्यशाली पूर्वजोंके कुलमें हमलोग उत्पन्न हुए हैं, यह अपना धन्य भाग्य समझना चाहिये। परन्तु कुछ लोग जो तुकारामजीको ज्ञानेश्वर-एकनाथसे अलग करना चाहते हैं उनकी यह चेष्टा देखकर बड़ा अचरज होता है। **'ज्ञानदेव नामदेव एका तुका'** श्रीपाण्डुरङ्ग भगवान्के कानके चार मोतियोंकी चौकड़ी है जो सर्वजनमान्य, सर्वप्रिय और सर्वपूज्य है। इसे कोई तोड़-फोड़ नहीं सकता। श्रीज्ञानेश्वर महाराज सब सन्तोंके मुकुटमणि हैं, ज्ञानामाईका दुग्धपान कर बहुतेरे

अध्यात्म-बलसे बलवान् हुए। ज्ञानेश्वरके शिष्य विसाजी खेचर नामदेवके गुरु थे अर्थात् ज्ञानेश्वर नामदेवके परम गुरु थे। एक और नामदेव विक्रमकी १६ वीं शताब्दीमें हुए हैं, उन्होंने ओवियोंमें महाभारतके कुछ पर्व, कुछ अभंग और कुछ सन्त-चरित्र लिखे हैं। नामदेवके अभंगोंका जो संग्रह छपा है उसमें मूल नामदेव और इन पीछेके नामदेव दोनोंकी कविताएँ एक-दूसरीमें मिल गयी हैं और उनसे बड़ा भ्रम फैलता है। तथापि ज्ञानेश्वर-समकालीन नामदेव ही सर्वसन्तमान्य नामदेव हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। ज्ञानेश्वर, नामदेव और एकनाथ—इसी परम्परामें तुकारामजी आ जाते हैं। इस अध्यायमें हमलोग यह देख चुके हैं कि ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवतके साथ तुकारामजीका कितना घनिष्ठ अन्तरङ्ग परिचय था। इस घनिष्ठताको कोई कैसे नष्ट कर सकता है—कैसे तुकारामको ज्ञानेश्वर और एकनाथसे अलग कर सकता है? नामदेव और तुकाराम ही भक्ति-ग्रन्थके प्रवर्तक हुए और ज्ञानेश्वर-एकनाथका इससे कोई सम्बन्ध नहीं, यह त्रिखण्ड-पण्डितोंका मत भी भरपूर प्रमाणोंके सामने एक क्षण भी नहीं ठहर सकता।

यह भागवत-सम्प्रदाय बहुत प्राचीन है, ज्ञानेश्वर महाराजसे भी बहुत पहलेका है। इस सम्प्रदायके मुख्य प्रचारक अवश्य ही ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम हुए। श्रेष्ठ पुरुषोंमें भागवत-धर्मकी निष्ठा है पर व्यक्तिनिष्ठ सम्प्रदाय नहीं है, यह भगवान् श्रीकृष्णके उपासकोंका सम्प्रदाय है। श्रीकृष्णकी उपासना इस सम्प्रदायका परम-धर्म है। जो कोई भी श्रीकृष्ण-भक्त होगा वह इस सम्प्रदायमें सम्मान्य है, उसकी जाति या वर्ण कुछ भी हो। ज्ञानेश्वर महाराज केवल इस कारण मान्य नहीं हैं कि वह ब्राह्मण थे, प्रत्युत इस कारणसे पूज्य हैं कि वह परम कृष्ण-भक्त थे। नामदेव और तुकाराम भी इसी कारणसे मान्य हैं। भागवत-सम्प्रदायमें जाति-पाँतिका बखेड़ा नहीं है और जाति-द्वेष और जातिसङ्कर भी नहीं है। उपर्युक्त चार प्रधान महामान्य महन्तोंके समान ही नरहरि सुनार, रैदास चमार, सजन कसाई, सूरदास, कबीर, वेश्या कान्हूपात्रा, चोखामेला महार, भानुदास, कान्हू पाठक, मीराबाई, गोरा कुम्हार, दाहू धुनिया, शेखमहम्मद, मुक्ताबाई और जनाबाई, बेदरके हाकिम दामाजी, दौलताबादके किलेदार जनार्दन स्वामी, साँवता माली, तुलाधार वैश्य आदि—सभी भगवद्भक्तोंको यह सम्प्रदाय

परमपूज्य मानता है। हरि-भक्तकी जाति नहीं पूछी जाती, वृत्ति नहीं पूछी जाती, पूर्व-चरित्र भी नहीं पूछा जाता। हरिभक्तकी कसौटीपर जो कोई बावन तोले, पाव रत्ती उतरे उसीको सन्त मानते हैं। इन सच्चे सन्तोंमें भी ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकारामको सन्तोंने ही महाराष्ट्रमें अग्रगण्य माना है। जातिके अभिमान या द्वेषसे इस चौकड़ीको कोई तोड़कर अलग करना चाहे तो वह सम्भव नहीं है। '**ज्ञानदेव, नामदेव एका तुका**' अथवा '**निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई।**' '**एकनाथ, नामदेव, तुकाराम**' ये भजन ही जो महाराष्ट्रकी सर्वसम्मतिसे बने हुए भजन हैं, इस बातके साक्षी हैं कि यह चतुष्टय एक हैं। एकात्म-भावसे इन्हें वन्दनकर हम यह प्रकरण समाप्त करते हैं।

यहाँतक तुकारामजीके ग्रन्थाध्ययनका विचार हुआ। संस्कृत-ग्रन्थोंमें गीता, भागवत, कुछ पुराण, भर्तृहरिके शतक और महिम्नादि स्तोत्र और मराठीमें ज्ञानेश्वरी, नाथ-भागवत, नामदेव-कबीरादि सन्तोंके पदोंके सूक्ष्म अध्ययनका तुकारामजीके आचार-विचारपर तथा भाषापर भी बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है, यह बात पाठकोंके ध्यानमें अच्छी तरहसे आ गयी होगी। जिनके ग्रन्थोंका उन्होंने अनेक बार आदर और विश्वासके साथ पारायण किया, जिनकी उक्तियों और उनके अन्तर्गत भावना-प्रधान सुविचारोंके साथ वह मनसे इतने तन्मय हो गये, जिनकी कथित भक्ति-ज्ञान-वैराग्यपूर्ण सत्कथाओंके साथ उनका पूर्ण तादात्म्य हो गया उन्हींकी विचार-पद्धति और भाषाशैलीका अभ्यास उन्हें भी हो गया, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। यह तो वही हुआ जो होना चाहिये था। परमार्थकी रुचि उत्पन्न होनेपर कुल-परम्पराप्राप्त तथा सहजसुलभ पण्ढरीके वारकरी सम्प्रदायका साधन-पथ तुकारामजीने हृदयकी सच्ची लगनके साथ ग्रहण किया और इसी पथपर चलते हुए इस पन्थके ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथादि पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका उन्होंने अध्ययन किया और इनके द्वारा निर्दिष्ट मार्गसे जाकर भगवत्कृपाके पूर्ण अधिकारी हुए और अन्तमें भक्तिके उत्कर्षसे, सद्धर्मके आचरणसे तथा प्रबोधकी शक्तिसे उन्हींकी मालिकामें जा बैठे।

सातवाँ अध्याय

गुरु-कृपा और कवित्व-स्फूर्ति

सपनेमें पाया गुरु-उपदेश। नाममें विश्वास दृढ़ धरा॥

—तुकाराम

१-विषय-प्रवेश

बड़ी उत्कण्ठाके साथ तुकारामजीका अभ्यास चल रहा था। वे सबसे यही जानना चाहते थे कि 'कब भगवान् मुझपर कृपा करेंगे,' 'क्या भगवान् मेरी लाज रखेंगे।' वह यह जाननेके लिये अत्यन्त अधीर हो उठे थे कि 'क्या मेरा भी उद्धार होगा,' 'क्या नारायण मुझपर अनुग्रह करेंगे?' वे चाहते थे किसी ऐसे महात्माके दर्शन हो जायँ जिनसे यह आश्वासन मिले कि हाँ, भगवान् तुझपर कृपा करेंगे। उनका चित्त विकल था यह जाननेके लिये कि कब मेरी बुद्धि स्थिर होगी, कब भगवान्का रहस्य मैं जान लूँगा, कैसे यह शरीर छूटनेसे पहले नारायणसे भेंट होगी, कब उनके चरणोंपर लोटूँगा, कब उनके लिये गद्गदकण्ठ होकर मैं अपना देह-भाव भूलूँगा, कब वह मुझे अपनी चारों भुजाओंसे गले लगावेंगे, कब ये नेत्र उनका स्वरूप देखकर शान्ति और तृप्ति-लाभ करेंगे। बस, यही एक धुन थी। वह अपने ही मनसे पूछते कि क्या मुझे ऐसे सत्पुरुष मिलेंगे जिन्होंने भगवान्के दर्शन किये हों। जिनके लिये प्रपञ्च छोड़ा, बहीखाता इन्द्रायणीमें डुबा दिया, धनको गोमांस-समान माननेकी शपथ की, घरद्वारतक छोड़ दिया, स्वजनोंमें कुख्याति लाभ की, एकान्तवास किया और वायु-वेगसे ग्रन्थाध्ययन तथा 'राम-कृष्ण-हरी' का सतत भजन किया, वह विश्वव्यापक पाण्डुरङ्ग कहाँ कैसे मिलेंगे? यह कौन बतलावेगा? वह सत्पुरुष कब मिलेंगे जिन्होंने पाण्डुरङ्गके दर्शन किये हों? इसी प्रतीक्षामें तुकारामजीके प्राण उथल-पुथल कर रहे थे। भगवान् कल्पवृक्ष हैं, चिन्तामणि हैं, चित्त जो-जो चिन्तन करे उसे पूरा करनेवाले हैं, यह अनुभव जो सभी भक्तोंको प्राप्त होता है, इस समय तुकारामजीको भी प्राप्त हुआ। उन्हें महात्माके दर्शन हुए, स्वप्नमें दर्शन हुए और उन्होंने तुकारामजीके मस्तकपर हाथ रखा, तुकारामजीको जो मन्त्र प्रिय था वही राम-कृष्णमन्त्र उन्होंने इनको दिया और तुकारामजीके जो परमप्रिय इष्ट थे

पाण्डुरङ्ग, उन्हींकी निष्ठापूर्वक उपासना करनेको उन्होंने इनसे कहा। तुकारामजीको यह विश्वास हो गया कि मैं जिस रास्तेपर चल रहा था वह ठीक ही था। राम-कृष्ण-हरीका भजन पहलेसे ही हो रहा था पर वही मन्त्र अब अधिकारी महात्माके मुखसे प्राप्त हुआ, उपासनाका रहस्य खुला, निश्चय दृढ़ हुआ, चित्त समाहित हो गया। न्यायालयसे मामलेका क्या फैसला होगा यह तो पक्षकारोंको पहलेसे ही मालूम रहता है, वकील भी बतलाते रहते हैं, पर जबतक जजके मुँहसे फैसला नहीं सुना जाता तबतक चित्त स्वस्थ नहीं होता। कुछ वैसी ही बात यह भी है। अधिकारी पुरुषके मुखसे जब मन्त्र सुना जाता है अथवा धीर पुरुषसे जब कोई आशीर्वाद मिलता है तब उससे जीवको शान्ति मिलती है। उसे अपना रास्ता सही होनेपर विश्वास हो जाता है। ग्रन्थ पढ़कर भी जो बात समझमें नहीं आती वह एक क्षणमें ध्यानमें आ जाती है। बुद्धि जहाँ पहुँच नहीं पाती उस पदका साक्षात्कार होता है। स्वानुभव-प्राप्त साक्षात्कारसम्पन्न महात्माके एक क्षण समागमसे सब काम बन जाता है। पारमार्थिक कृतविद्य महापुरुषके दर्शनमात्रसे परमार्थ रोम-रोममें भर जाता है। तुकारामजीके पुण्य-बलसे उन्हें ऐसा अपूर्व-शुभ संयोग प्राप्त हुआ।

२-सद्गुरु बिना कृतार्थता नहीं

सद्गुरु-प्रसादके बिना कोई भी अपना परमार्थ सिद्ध नहीं कर सका है। जो लोग यह समझते हैं कि हमने ग्रन्थोंका अध्ययन कर लिया है, परोक्षज्ञान हमें मिल चुका है, हमें अपनी बुद्धिसे ही ज्ञानका रहस्य अवगत हो चुका है, अब हमें किसीको गुरु बनानेकी क्या आवश्यकता है? हम जो कुछ जानते हैं उससे अधिक कोई गुरु भी क्या बतलावेंगे?—जो लोग ऐसा समझते हैं—वे अन्तमें अहङ्कारके जालमें ही फँसे हुए दिखायी देते हैं। गुरु-कृपाके बिना रज-तम धुलकर निर्मल नहीं होते, ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञानमें पूर्ण और दृढ़तम निष्ठा भी नहीं होती, ज्ञानका साक्षात्कार होना तो बहुत दूरकी बात है। ज्ञानेश्वर महाराज (अ० १०-१७२ में) कहते हैं कि 'समग्र वेद-शास्त्र पढ़ डाले, योगादिकोंका भी खूब अभ्यास किया; पर इनकी सफलता तभी है जब श्रीगुरुकी कृपा हो।' कमाई तो अपने ही परिश्रमकी होती है तथापि उसपर जबतक श्रीगुरु-कृपाकी मुहर नहीं लगती तबतक भगवान्के दरबारमें उसका कोई मूल्य नहीं

होता। अत्यन्त सूक्ष्म और विशुद्ध बुद्धिके द्वारा ज्ञान प्राप्त होनेपर भी दीपकसे पैदा होनेवाले काजलके समान ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला अहङ्कार सद्गुरुके चरण गहे बिना नि:शेष नष्ट नहीं होता। श्रीराम और श्रीकृष्णको भी श्रीगुरु-चरणोंका आश्रय लेना पड़ा, तब औरोंकी तो बात ही क्या है? वेद, शास्त्र, पुराण और सन्त सब इस विषयमें एक मत हैं। श्रुतिकी यह आज्ञा है कि 'श्रोत्रिय' अर्थात् श्रुति-शास्त्र-निपुण और 'ब्रह्मनिष्ठ' अर्थात् स्वानुभवसम्पन्न सद्गुरुकी शरण लो, उससे ब्रह्मविद्याका अनुभव प्राप्त करोगे। '**शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्**' ऐसे सद्गुरुकी शरण लेनेको भागवतकारने कहा है और गीतामें भगवान्‌ने भी '**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया**' कहा है। '**आचार्यवान् पुरुषो वेद**' आत्मवेत्ता महापुरुषके चरण गहनेको वेदोंने कहा है और श्रीमत् शङ्कराचार्य भी यही कहते हैं—

षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

महद् भाग्यसे सद्गुरुके दर्शन होते हैं और जब ऐसे दर्शन हों तब अनन्य मन हो उनकी शरणमें जाना और '**यथा देवे तथा गुरौ**' अर्थात् भगवान्‌के समान ही उनका पूजन और भजन करना सनातन रीति है। सद्गुरु सदा तृप्त ही रहते हैं, इससे अधिकारी जीवोंपर उन्हें करुणा आती है। कहते हैं—

'मेरा पेट तो भरा, पर अब ऐसी प्यास लगी है कि अन्य जीवोंकी आस पूरी करूँ। नावका भार आखिर जलपर ही रहता है; वह भार चाहे हलका हो या भारी, इससे क्या?'

अपरम्पार स्वानन्द-समुद्रमें चलनेवाली गुरुरूप नौकाके लिये दो-चार पथिकोंका भार ही क्या? दो-चार चढ़ लिये या दो-चार उतर गये तो इसका उसपर बोझ ही क्या? सच तो यह है कि सद्गुरुको सत्-शिष्यके मिलनका ही आनन्द है, इससे अद्वैतानुभवका आनन्द द्वैतरूपमें वह भोग सकते हैं! गीताज्ञानेश्वरीमें अर्जुनके प्रश्न करनेपर भगवान् यह कहकर अपना आनन्द व्यक्त करते हैं कि 'हे अर्जुन! तुम प्रश्न करके मुझे मेरा वह आनन्द दिला रहे हो जो

अद्वैतानन्दके भी परे है।' (ज्ञानेश्वरी १५—४५०) अबाध शब्द-शास्त्र परिपूर्ण स्वानुभव, उत्तम प्रबोध-शक्ति, दैवी दयालुता और परमा-शान्ति—ये पाँचों गुण श्रीगुरुमें नित्य वास करते हैं। एकनाथी भागवत (अ० ३) में श्रीगुरुके लक्षण बतलाते हैं कि 'वह दीनोंपर तन, मन और वाणीसे बड़े दयालु होते हैं, शिष्यके भव-बन्धन काट डालते हैं, अहङ्कारकी छावनी उठा देते हैं, वह शब्द-ज्ञानमें पारङ्गत होते हैं, ब्रह्मज्ञानमें सदा झूमते रहते हैं, निज-भावसे शिष्यको प्रबोध करानेमें समर्थ होते हैं।'

गुरु-प्रसादके बिना ही कोई सन्त-पदवीको प्राप्त हुआ हो, ऐसा एक भी पुरुष नहीं है। सभी संतोंने गुरु-प्रसादका महत्त्व और माधुर्य बखाना है। गुरु-भक्तिके सहस्रों अवतरण दिये जा सकते हैं, पर विस्तार-भयसे संक्षेप ही करना पड़ता है। गुरुस्तुतिका साहित्य बहुत बड़ा है, वह अनुभवका साहित्य है और अत्यन्त हृदयङ्गम है। जिसे गुरु-प्रसाद मिला हो, गुरु-सेवाका परमानन्द जिसने भोग किया हो वही उसकी माधुरी जान सकता है। ज्ञानदेव और एकनाथ दोनोंने ही गुरु-भक्तिकी अपूर्व और अपार माधुरी पायी थी। इन्होंने सद्गुरु-समागम और सद्गुरु-सेवाका आनन्द खूब लूटा। दोनोंके ग्रन्थोंमें सब मङ्गलाचरण श्रीगुरु-स्तवनपरक हैं और ये अत्यन्त मधुर हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके १३वें अध्यायमें ७वें श्लोकका '**आचार्योपासनम्**' पद देखते ही श्रीश्रीज्ञानेश्वर महाराजकी गुरु-भक्तिकी धारा महाप्रवाहके रूपमें जो उमड़ पड़ी है वह सौ ओवियोंको पार करके भी उनके रोके नहीं रुकी है। उनकी गुरुभक्तिका आनन्द जिन्हें लेना हो वे श्रीज्ञानेश्वर-चरित्रमें 'उपासना और गुरु-भक्ति' अध्याय पूरा पढ़ जायँ। उसी प्रकार एकनाथ महाराजकी गुरु-भक्तिका जिन्हें दर्शन करना हो वे एकनाथ-चरित्र देखें। गुरुभक्तके लिये गुरु और उपास्य एक होते हैं। ज्ञानेश्वर और एकनाथने श्रीगुरु-मूर्तिमें ही भगवान्‌के दर्शन किये। तुकारामजीने भगवान्‌हीको श्रीगुरु देखा। गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं और परब्रह्म परमात्मा ही गुरुके सगुण-रूपमें साधकको कृतार्थ करते हैं। गुरु-प्रसादके बिना कोई साधक कभी कृतार्थ नहीं हुआ। श्रीगुरु बोलते-चालते ब्रह्म हैं। उनकी चरणधूलिमें लोटे बिना कोई भी कृतकृत्य नहीं हुआ।

३-स्वामी विवेकानन्दका अनुभव

आधुनिक कालके सुविख्यात सत्पुरुष स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द भी श्रीगुरुके शरणागत होकर ही कृतार्थ हुए। स्वामी विवेकानन्द अपने भक्ति-योग-विषयक प्रबन्धमें कहते हैं—'गुरुकी कृपासे मनुष्यकी छिपी हुई अलौकिक शक्तियाँ विकसित होती हैं, उन्हें चैतन्य प्राप्त होता है और उनकी आध्यात्मिक वृद्धि होती है और अन्तमें वह नरसे नारायण होता है। आत्म-विकासका यह कार्य ग्रन्थोंके पढ़नेसे नहीं होता। जीवनभर हजारों ग्रन्थोंको उलटते-पलटते रहो, उससे अधिक-से-अधिक तुम्हारा बौद्धिक ज्ञान बढ़ेगा, पर अन्तमें यही जान पड़ेगा कि इससे अध्यात्म-बल कुछ भी नहीं बढ़ा। बौद्धिक ज्ञान बढ़ा तो उसके साथ अध्यात्म-बल भी बढ़ना ही चाहिये, यह कोई कहे तो वह सच नहीं है। ग्रन्थोंके अध्ययनसे इस प्रकारका भ्रम होता है, पर सूक्ष्मताके साथ अवलोकन करनेसे यह जान पड़ेगा कि बुद्धिका तो खूब विकास हुआ तो भी अध्यात्म-शक्ति जहाँ-की-तहाँ ही रह गयी। अध्यात्म-शक्तिका विकास करानेमें केवल ग्रन्थ असमर्थ हैं, और यही कारण है कि अध्यात्मकी बातें करनेवाले लोग बहुत मिलते हैं पर कहनीके साथ रहनीका मेल हो, ऐसा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है। किसी जीवको आध्यात्मिक संस्कार करानेके लिये ऐसे ही महात्माकी आवश्यकता होती है जो जीवकोटिसे पार निकल गया हो। यह ताकत ग्रन्थोंमें नहीं है। आध्यात्मिक संस्कार जिसका होता है वह है शिष्य और संस्कार करनेवाला है गुरु। भूमि तपकर जोत-जातकर तैयार हो, और बीज भी शुद्ध हो; ऐसे उभय-संयोगसे ही अध्यात्मका विकास होता है।....अध्यात्मकी तीव्र क्षुधाके लगते ही अर्थात् भूमिके तैयार होते ही उसमें ज्ञान-बीज बोया जाता है। सृष्टिका यही नियम है। आत्मप्रकाश ग्रहण करनेकी क्षमता सिद्ध होते ही प्रकाश पहुँचानेवाली शक्ति प्रकट होती है। ....सत्यज्ञानानन्दस्वरूप सद्गुरुको संसार ईश्वर-तुल्य मानता है। शिष्य शुद्धचित्त, जिज्ञासु और परिश्रमी होना चाहिये। जब शिष्य अपनेको ऐसा बना लेता है तब श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, निष्पाप, दयालु और प्रबोधचतुर समर्थ सद्गुरु उसे मिलते हैं। ....सद्गुरु शिष्योंके नेत्रोंमें ज्ञानाञ्जन लगाकर उसे दृष्टि देते हैं। ऐसे सद्गुरु बड़े भावसे जब मिलें तब अत्यन्त नम्रता, विमल सद्भाव और दृढ़ विश्वासके साथ उनकी शरण लो, अपना सम्पूर्ण हृदय

उन्हें अर्पण करो, उनके प्रति अपने चित्तमें परम प्रेम धारण करो, उन्हें प्रत्यक्ष परमेश्वर समझो; इससे भक्ति-ज्ञानका अपना समुद्र प्राप्तकर कृतकृत्य होगे। ....महात्मा सिद्ध पुरुष ईश्वरके अवतार ही होते हैं। वे केवल स्पर्शसे, एक कृपा-कटाक्षसे, केवल संकल्पमात्रसे भी शिष्यको कृतार्थ करते हैं, पर्वतप्राय पापोंका बोझ ढोनेवाले भ्रष्ट जीवनको भी अपनी दयासे क्षणार्धमें पुण्यात्मा बनाते हैं। वे गुरुओंके गुरु हैं। मनुष्यरूपमें प्रकट होनेवाले साक्षात् नारायण हैं। मनुष्य इन्हींके रूपमें परमात्माको देख सकता है। भगवान् निर्गुण-निराकार हैं। पर हमलोग जबतक मनुष्य हैं तबतक हमें उन्हें मनुष्यरूपमें ही पूजना चाहिये। तुम जो चाहो कहो, चाहे जितना प्रयत्न करो, पर तुम्हें मनुष्यरूपी (सगुण) परमेश्वरका ही भजन करना होगा। निर्गुण-निराकारका पाण्डित्य चाहे कोई जितना ही बघारे, सगुणका तिरस्कार करे; अवतारोंकी निन्दा करे, सूर्य, चन्द्र, तारागणोंको दिखाकर बुद्धिवादसे उन्हींमें देवत्व देखनेको कहे—पर उसमें यथार्थ आत्मज्ञान कितना है यह यदि तुम देखो तो वह केवल शून्य है। हमलोग मनुष्य हैं, परमात्मा हमसे सगुणरूपमें—सद्गुरुरूपमें ही मिलते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।' (स्वामी विवेकानन्दके समग्र ग्रन्थ भाग ३ पृ० ५१६—५२१ मूल अंग्रेजीसे)

स्वामी आगे और कहते हैं, 'भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुके नेत्र श्रीगुरु ही खोलते हैं। गुरु और शिष्यका सम्बन्ध पूर्वज और वंशजके सम्बन्ध-जैसा ही है। श्रद्धा, नम्रता, शरणागति और आदर-भावसे शिष्य गुरुका मन मोह ले तो ही उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है और विशेषरूपसे ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि जहाँ गुरु-शिष्यका नाता अत्यन्त प्रेमसे युक्त होता है वहीं प्रचण्ड अध्यात्मशक्तिके महात्मा उत्पन्न होते हैं। स्वानुभूति ज्ञानकी परम सीमा है, वह स्वानुभूति ग्रन्थोंसे नहीं प्राप्त हो सकती। पृथ्वी-पर्यटनकर चाहे आप सारी भूमि पादाक्रान्त कर डालें, हिमालय, काकेशस, आल्प्स-पर्वत लाँघ जायँ, समुद्रकी गहराईमें गोता लगाकर बैठ जायँ, तिब्बत-देश देख लें या गोबीका जंगल छान डालें, स्वानुभवका यथार्थ धर्म-रहस्य इन बातोंसे, श्रीगुरुके प्रसादके बिना त्रिकालमें भी नहीं ज्ञात होगा। इसलिये भगवान्‌की कृपासे जब ऐसा भाग्योदय हो कि श्रीगुरु दर्शन दें तब सर्वान्तःकरणसे श्रीगुरुकी शरण लो, उन्हें ऐसा समझो जैसे यही परब्रह्म हों, उनके बालक बनकर अनन्यभावसे उनकी

सेवा करो, इससे तुम धन्य होगे। ऐसे परम प्रेम और आदरके साथ जो श्रीगुरुके शरणागत हुए, उन्हींको—और केवल उन्हीं—सच्चिदानन्द प्रभुने प्रसन्न होकर अपनी परमभक्ति और अध्यात्मके अलौकिक चमत्कार दिखाये हैं।'

४-हीरेकी खोज

तुकारामजीका परमार्थ ऊपर-ही-ऊपरका नहीं था, इसलिये उन्होंने ऐसी जल्दबाजी नहीं की कि जो मिला उसीको उन्होंने गुरु मान लिया। बहुतोंको उन्होंने कसौटीपर कसकर देखा और दूरसे ही प्रणाम कर विदा किया। जहाँ-तहाँ ब्रह्मज्ञानकी कोरी बातें ही सुन पड़ीं, कहीं उसका मूर्त लक्षण नहीं देख पड़ा। वह सच्चा ब्रह्मज्ञान चाहते थे। हाथ पसारकर उन्होंने यही याचना की थी कि—

निरें कोणापाशीं होय एक रज। तरी द्यारे मज दुर्बळाशीं॥

'निर्मल ब्रह्मज्ञान यदि किसीके पास हो तो उसका एक रज:कण मुझे दे दो।'

बड़ी दीनताके साथ उन्होंने यही पुकार की थी। पर जहाँ-तहाँ उन्होंने दिखावके पर्वत देखे; बिना नींवकी ही दीवार देखी! पाखण्ड और दम्भ देखकर वह चिढ़ गये। उन्होंने पाखण्डी गुरुओं और दाम्भिक संतोंकी, अपने अभंगोंमें खूब खबर ली है।

काम क्रोध लोभ चित्तीं। वरिवरि दाविती विरक्ती॥
तुका म्हणे शब्दज्ञानें। जग नाडियेलें तेणें॥ १॥

'चित्तमें तो काम-क्रोध-लोभ भरा हुआ है पर ऊपरसे विरक्त बने हुए हैं। कोरे शब्दज्ञानसे संसारको धोखा दे रहे हैं।'

* * *

डोई वाढवूनि केश। भूतें आणिती अंगास॥ १॥
तरी ते नव्हती संतजन। तेथें नाहीं आत्मखुण॥ २॥

'सिरपर जटा बढ़ाये हुए हैं, भूत-प्रेत बुला लेते हैं। पर वे संतजन नहीं हैं, वहाँ कोई आत्मलक्षण नहीं है।'

* * *

रिद्धिसिद्धीचे साधक। वाचासिद्ध होती एक।
त्यांचा आम्हांसी कंटाळा। पाहों मावडती डोळां॥

'कोई ऋद्धि-सिद्धिके साधक हैं, कोई वाक्-सिद्ध हैं। पर इन सबसे हमारा जी ऊबा हुआ है, इन्हें हम आँखों नहीं देखना चाहते।'

* * *

दावुनि वैराग्याची कळा। भोगी विषयांचा सोहळा॥
ज्ञान सांगतो जनासी। अनुभव नाहीं आपणांसी॥ १॥

'वैराग्यकी चमक दिखा देते हैं पर विषयोंको ही भोगते रहते हैं। लोगोंको ज्ञान बतलाते हैं पर स्वयं अनुभव कुछ भी नहीं करते।'

* * *

ऐसे दाम्भिक, अधकचरे और पेटू आदमी जहाँ-तहाँ भी कौड़ीके तीन-तीन मिलते हैं। तुकारामजीकी शुद्ध और सूक्ष्म दृष्टिको सच्चे-झूठेका निपटारा करते कितनी देर लगती? साधारण मनुष्य ऊपरी दिखावमें फँसते हैं, पर तुकारामजी फँसनेवाले नहीं थे। '**नव्हती ते संत करितां कवित्व**' वाले अभंगमें यह बतलाते हैं कि जो कविता करते हैं वे संत नहीं हैं, संतोंके घरवाले संत नहीं हैं; अपना घर भरकर दूसरोंको निराशाका भाव बतलानेवाले संत नहीं हैं; केवल कथा बाँचनेवाले, कीर्तन करनेवाले, माला-मुद्रा धारण करनेवाले, भभूत रमानेवाले, जंगलोंमें रहनेवाले, कर्मठ, जप-तप करनेवाले संत नहीं हैं। ये सब बाह्य लक्षण हैं, इनसे किसीकी साधुता नहीं जानी जाती।

तुका म्हणे नाहीं निरसला देह। तंववरी हे अवधे सांसारिक॥

'जबतक देहका निरास नहीं हुआ, देहबुद्धि नष्ट नहीं हुई, तबतक ये सब सांसारिक ही हैं।' तुकारामजी इन्हें 'अपने मुखसे संत नहीं कह सकते' जबतक इनके अन्दर द्रव्यका लोभ और बड़ाईकी इच्छा है। जिनका बाह्य वेष साधुका-सा है पर अन्तःकरण विषयासक्त है उन्हें तुकारामजी दूरसे 'हीरेके समान चमकनेवाले ओले' कहते हैं। ऐसे बने हुए संत अनेक होते हैं, पर इनमेंसे कोई भी तुकारामजीकी आँखोंमें धूल नहीं झोंक सका।

सच्चे संत बहुत दुर्लभ हैं। संतोंको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते तुकारामजी थक गये। उनकी आशा निराशा हो गयी। उस समय उनके मुखसे ये उद्‌गार निकले हैं—

'ज्ञानियोंके यहाँ भगवान्‌को ढूँढ़ना चाहा, पर देखा यही कि अहङ्कार इन ज्ञानियोंके पीछे पड़ा है। वेद-परायण पण्डितों और पाठकोंको देखा कि एक-

दूसरेको नीचे गिरानेमें ही लगे हुए हैं। देखनी चाही इनकी आत्मनिष्ठा, पर उलटी ही चेष्टा दिखायी दी। योगियोंको देखा, उनमें भी शान्ति नहीं, मारे क्रोधके एक-दूसरेपर गुरगुराया करते हैं। इसलिये हे विट्ठल! अब मुझे किसीका मुहताज मत करो। मैंने इन सब उपायोंको छोड़ तुम्हारे चरण दृढ़तासे पकड़ लिये हैं।'

५-गुरु ही मुमुक्षुको ढूँढ़ते हैं

'संत दुर्लभ तो हैं, पर अलभ्य नहीं। चन्दन महँगा मिलता है, पर मिलता तो है। कस्तूरी चाहे जब चाहे जहाँ मिट्टीकी तरह सस्ती नहीं मिलती, पर जिसके पास उसके दाम हैं उसे मिलती ही है। हीरे-जैसे रत्नोंको गरीब बेचारे देख भी नहीं सकते, पर धनी उन्हें खरीद सकते हैं। इसी प्रकार जिसके पास प्रचुर पुण्य-धन है उसे सत्सङ्ग-लाभ होता है। सत्सङ्ग दुर्लभ है, पर अमोघ भी है। भाग्यश्रीका जब उदय होना होता है तभी संत मिलते हैं, इनमें जिन्हें भगवान्‌की आज्ञा होगी वे स्वयं ही चले आवेंगे और कृतार्थ करेंगे। मुमुक्षुको गुरु ढूँढ़ना नहीं पड़ता, गुरु ही ऐसे शिष्योंको जो कृतार्थ होनेयोग्य हुए हों, ढूँढ़ा करते हैं। फलके परिपक्व होते ही तोता बिना बुलाये ही आकर उसपर चोंच मारता है। उसी प्रकार विरक्त जीवको देखते ही दयाकुल गुरु दौड़े आते हैं और आत्मरहस्य बतलाकर उसे कृतार्थ करते हैं। सब संत सद्‌गुरुस्वरूप ही हैं, तथापि सब स्त्रियाँ माताके समान होनेपर भी स्तनपान करानेवाली माता एक ही होती है, वैसे ही सब संत सद्‌गुरुके समान होनेपर भी स्वानुभवामृत पान करानेवाली, ईश्वरनियुक्त सद्‌गुरु-माता भी एक ही होती हैं और मुमुक्षु शिशु जब भूखसे व्याकुल होकर रोने लगता है तब सद्‌गुरु-मातासे एक क्षण रहा नहीं जाता और वह दौड़ी चली आती और शिशुको अमृतपान कराती है। गुरु ईश्वरनियुक्त होते हैं, गुरु-शिष्यका सम्बन्ध अनेक जन्मजन्मान्तरोंसे चला आता है और यह गुरु निश्चित समयपर निश्चित शिष्यको कृतार्थ किया करते हैं। तुकारामजीके सद्‌गुर बाबाजी चैतन्य इसी प्रकारसे भगवदिच्छानुसार यथाकाल यथोचित रीतिसे तुकारामजीके सामने प्रकट हुए और उन्हें उन्होंने अपना प्रसाद दिया।

६-बाबाजीका स्वप्नोपदेश

तुकारामजीको गुरूपदेश प्राप्त हुआ, उस प्रसङ्गके उनके दो अभंग हैं। पहला अभंग विशेष प्रसिद्ध है, उसीका आशय नीचे देते हैं—

गुरुराजने सचमुच ही मुझपर बड़ी कृपा की पर मुझसे उनकी कुछ भी सेवा न बन पड़ी। स्वप्नमें, गङ्गा-स्नान (इन्द्रायणी-स्नान) के लिये जाते हुए, रास्तेमें वह मिले और उन्होंने मस्तकपर हाथ रखा। उन्होंने भोजनके लिये एक पाव घी माँगा पर मुझे इसका विस्मरण हो गया। कुछ अन्तराय हो गया इसीसे उन्होंने जानेकी जल्दी की। उन्होंने गुरु-परम्पराके नाम बताये 'राघव चैतन्य' और 'केशव चैतन्य' अपना नाम बताया बाबाजी चैतन्य और 'राम-कृष्ण-हरी' मन्त्र दिया। माघ शुक्ल दशमी गुरुवारको गुरुका वार सोचकर (इस प्रकार गुरुने) मुझे अङ्गीकार किया।

इससे निम्नलिखित बातें मालूम हुईं—

(१) सद्गुरुने तुकारामजीपर अनुग्रह किया और उन्हें 'राम-कृष्ण-हरी' का मन्त्र दिया।

(२) यह उपदेश उन्हें स्वप्नमें इन्द्रायणीमें स्नान करनेके लिये जाते हुए प्राप्त हुआ। गुरुने उनके मस्तकपर हाथ रखा।

(३) सद्गुरुने भोजनके लिये एक पाव घी माँगा पर तुकारामजी घी लाकर देना भूल गये। जागनेपर तुकारामजीको इस बातका बड़ा दुःख हुआ कि सद्गुरुकी कुछ भी सेवा न बन पड़ी और उन्हें यही समझ पड़ा कि सेवामें प्रत्यवाय होनेसे ही सद्गुरु जल्दीसे चले गये।

(४) सद्गुरुने अपनी गुरु-परम्परा बतायी—राघव चैतन्य, केशव चैतन्य और अपना नाम बाबाजी चैतन्य बताया।

(५) यह गुरूपदेश तुकारामजीको माघ शुक्ल दशमी गुरुवारको मिला।

(६) इस प्रकार सद्गुरुने तुकारामजीको अङ्गीकार किया।

तुकारामजी फिर कहते हैं—

'गुरुराज मेरे मनका भाव जानकर वैसा ही उपाय करते हैं। उन्होंने वही सरल मन्त्र बताया जो मुझे प्रिय था, जिसमें कोई बखेड़ा नहीं। इसी मार्गसे चलकर अनेक साधु-संत भवसागरसे पार उतर गये। जान-अजान जो जैसे शिष्य होते हैं गुरु उन्हें वैसा ही उपाय बतलाते हैं। शिष्योंमें कोई नदीके उतारमें तैरनेवाले, कोई सङ्गीके सङ्ग चलनेवाले, कोई जहाजपर चढ़नेवाले और कोई कमरबन्द कसे रहनेवाले होते हैं; जो जैसे होते हैं उन्हें उनके अधिकारके अनुसार वैसा ही उपाय बताया जाता है।'

तुका कहता है, 'गुरुने मुझे कृपासागर पाण्डुरङ्ग ही जहाज दिया।' इससे तीन बातें मिलीं—

(७) मेरे मनका भाव जानकर सद्गुरुने ऐसा प्रिय और सरल मन्त्र दिया कि कहीं कोई बखेड़ा नहीं।

गुरूपदेश पानेके पूर्वसे ही तुकारामजी बड़े प्रेमसे श्रीविट्ठलकी उपासना करते थे और 'राम-कृष्ण-हरी' का ही मन्त्र जपा करते थे। विट्ठल उनके कुलदेव थे। उपास्यदेवका ही प्रिय मन्त्र गुरुने बताया, इससे कोई बखेड़ा नहीं हुआ। यदि गुरुने गणेशकी उपासना और गणेशका मन्त्र दिया होता अथवा अन्य किसी देवताके मन्त्रकी दीक्षा दी होती या योग-यागादि साधन करनेको कहा होता तो अवश्य ही बखेड़ा होता। पहलेसे जो साधना हो रही है उसीको आगे चलानेका गुरुने उपदेश दिया, इससे तुकारामजीका उत्साह द्विगुण हो गया। ऐसा यदि न होता तो यह झगड़ा आ पड़ता कि पहलेसे जो उपासना चली आ रही है वह कैसे छोड़ दी जाय और गुरुकी बतायी उपासना भी कैसे न की जाय? इससे संशयको आश्रय मिल सकता था, मन विचलित होकर गड़बड़ा सकता था। पर गुरुने 'मुझे कृपासागर पाण्डुरङ्ग ही जहाज दिया' मेरा जो प्रिय था वही 'राम-कृष्ण-हरी' मन्त्र दिया और जो उपासना मैं कर रहा था उसीको निष्ठाके साथ आगे चलानेका उपदेश दिया, इससे कोई बखेड़ा नहीं पैदा हुआ।

(८) अनेक साधु-सन्त-ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथादि—इसी मार्गसे चलकर भवसागर पार कर गये।

तुकोबारायको जैसे विट्ठलकी उपासना प्रिय थी, 'राम-कृष्ण-हरी' नाम प्रिय था वैसे ही ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथादिका नित्य ग्रन्थ-सत्सङ्ग भी प्रिय था, क्योंकि इन्हींके ग्रन्थोंका वह नित्य पठन, श्रवण और मनन किया करते थे। सद्गुरुका ऐसा अनुकूल उपदेश मिलनेसे यह क्रम भी उनका बना रहा। गुरुने उन्हें दत्तात्रेयका मन्त्र देकर श्रीगुरु-चरित्रके पारायण करनेको कहा होता तो उससे भी उनका काम बन जाता, पर पूर्व-संस्कारसे जो उपासना दृढ़ हो चुकी थी वह एकदम छोड़ देनी पड़ती और नया साधन नये ढंगसे करना पड़ता! इससे भी कुछ-न-कुछ बखेड़ा ही होता। इस प्रकार स्वभावसे ही प्रिय उपास्य, प्रिय मन्त्र और प्रिय सम्प्रदायपरम्परा छोड़नेकी कोई आवश्यकता

नहीं पड़ी प्रत्युत उसीको और दृढ़ करनेका उपदेश गुरुसे प्राप्त होनेके कारण कोई बखेड़ा नहीं हुआ।

(९) मुझे मेरा प्रिय मार्ग ही सद्गुरुने दिखा दिया, पर इसका यह मतलब नहीं है कि मेरे सद्गुरु यही एक मार्ग जानते थे या बतलाते थे; गुरुराज तो समर्थ हैं, वह जान-अजान सबको मार्ग बतलानेवाले हैं, जो शिष्य जिस अधिकारका हुआ उसे उसी अधिकारका उपदेश देते हैं—'**उतार सांगडी तापे पेटी**'-'**उतार, संग, जहाज, कमरबन्द।**' ये सभी उपाय वह बतलाते हैं। इस चरणका, बल्कि यह कहिये कि इस अभंगका रहस्य समझनेके लिये ज्ञानेश्वरीका आश्रय लेना पड़ेगा। गीताके "**दैवी ह्येषा गुणमयी** (अ० ७। १४) और '**तेषामहं समुद्धर्ता**' (अ० १२। ७) इन श्लोकोंपर ज्ञानेश्वर महाराजकी जो ओवियाँ हैं उन्हें सामने रखकर इस चरणका अर्थ ठीक लगता है। जान-अजान सबको अपने-अपने अधिकारके अनुसार ही मार्ग बताया जाता है। 'जो अकेले हैं (अर्थात् ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि) उन्हें योगमार्ग दिखाते और जो परिग्रही (गृहस्थ) हैं उन्हें नाम-नौकापर बिठाते हैं। माया-नदीको तैरकर पार करते हुए कोई 'उतार' के रास्तेसे जाते हैं। अहंभाव त्यागकर 'ऐक्यके उतार'से जाते हैं। (ज्ञानेश्वरी ७—१००), कोई 'वेदत्रयीको संगी' बनाकर उनके संग चलते हैं (८४), कोई 'यजनक्रियाका कमरबन्द कमरमें कस लेते हैं' (८९) और कोई 'आत्म-निवेदनके जहाज' पर चढ़ते हैं। तुकारामजीके कथनका तात्पर्य भी यही है कि समर्थ सद्गुरुके पास सभी साधन मौजूद हैं, पर शिष्यकी रुचि देखकर वैसा इष्ट उसे बतलाते हैं। मुझे श्रीगुरुने ऐसा ही प्रिय मन्त्र बताया, इसलिये इन विविध साधनोंका कोई झमेला नहीं पड़ा।

और भी चार-पाँच स्थानोंमें गुरूपदेश-सम्बन्धी उल्लेख हैं। एक स्थानमें कहा है कि श्रीगुरुने 'कर-स्पर्श करके सिरपर हाथ फेरा और कहा कि चिन्ता मत करो' एक-दूसरे स्थानमें कहा है कि श्रीगुरुने 'राम-कृष्णमन्त्र बताया, सब समय वाणीसे यही उच्चार करता हूँ।' श्रीसद्गुरुने स्वप्नमें तुकारामजीको दर्शन देकर 'राम-कृष्ण' मन्त्र बताया, इसके सिवा और कुछ भेदकी बात बतायी हो तो उसे तुकारामजीने नहीं प्रकट किया है। साम्प्रदायिक रहस्य खुल्लमखुल्ला कोई बतलाता भी नहीं।

७-दिनकर गोसाईं

बाबाजी चैतन्यने तुकारामजीको स्वप्नमें जैसे उपदेश दिया, ऐसी ही घटना इसके २० वर्ष बाद नगर-जिलेमें भिंगारसे उत्तर-पूर्व १४ कोसपर वृद्धेश्वरमें भी हुई थी, जिसका उल्लेख मराठीसाहित्यमें मौजूद है। 'स्वानुभवदिनकर' नामक सुन्दर ग्रन्थके कर्ता दिनकर गोसावी (गोसाईं) समर्थ श्रीरामदासस्वामीके शिष्य थे। यह भिंगारके जोशी थे, इनका कुलनाम मुळे था, पर ज्योतिषी होनेके कारण यह पाठक कहलाने लगे। दिनकरका ऐन यौवनकाल था। जब उन्हें वैराग्य प्राप्त हुआ और वह अपना गाँव छोड़कर वृद्धेश्वरकी सुरम्य कन्दरामें शाके १५७४ में जा रहे। उस एकान्त स्थानमें उन्होंने एक वर्ष यथाविधि पुरश्चरण किया। शाके १५७५ को फाल्गुनी पूर्णिमाकी रातमें नाम-स्मरण करते हुए उन्हें निद्रा लग गयी। दिनकर स्वामी कहते हैं, 'वह जाग्रत्स्वप्ननिद्रान्त तुर्या अवस्था थी, मन अष्टभावसे विनीत था और नेत्र उन्मीलित थे।' उस समय समर्थ श्रीरामदासस्वामीके भेषमें भगवान् श्रीरामचन्द्र सामने प्रकट हुए और उन्होंने उनके मस्तकपर अपना बायाँ हाथ रखा। और दिनकर गोसावी तुरंत जाग पड़े। उन्हें परम आनन्द हुआ पर वही मूर्ति जागतेमें दर्शन दे इसके लिये उनका चित्त विकल हो उठा। और 'स्वानुभवके आनन्दसे वह चित्त तत्काल उसी लक्ष्यमें ध्यान-संलग्न हो गया।'

माताके न दिखायी देनेसे नन्हें बच्चेकी अथवा गौके समयपर घर न आनेसे बछड़ेकी या धन खर्च हो जानेपर कृपणकी जो हालत होती है, वही हालत दिनकरकी हुई। कुछ स्वप्न, कुछ जागृति, कुछ सुषुप्ति तीनों ही अवस्थाएँ कुछ-कुछ थीं, तीनोंकी सन्धि थी। उस सन्धिमें चित्त तुर्यावस्थामें जहाँ-का-तहाँ विरत होकर तटस्थ हो गया और भगवान् श्रीरामचन्द्रने समर्थ श्रीरामदासस्वामीके रूपमें दिनकरके मस्तकपर बायाँ हाथ रखा। स्वप्नमें जिस मूर्तिके दर्शन हुए थे वह मूर्ति चित्तमें बैठ गयी और उन्होंने यह निश्चय किया कि जाग्रत्में उस मूर्तिके दर्शन जबतक नहीं होंगे तबतक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। वह एक वर्षतक इस हालतमें रहे। बाह्योपाधि उनकी छूट गयी, स्वप्न-मूर्ति अंदर-बाहर व्याप गयी। इस प्रकार जब एक वर्ष पूरा हुआ तब संवत् १७११ फाल्गुन-मासकी पूर्णिमाको साक्षात् समर्थ प्रकट हुए। तब दिनकरके आनन्दकी कोई सीमा न रही।

समर्थने उनके मस्तकपर दाहिना हाथ रखा और उन्हें कृतार्थ किया। दाहिना हाथ सद्गुरुके सिवा और कोई भी नहीं रख सकता। यह सम्पूर्ण कथा 'स्वानुभवदिनकर' ग्रन्थ (कलाप १६ किरण ४) में लिखा है।

तुकारामजीके स्वप्नानुग्रह और दिनकर गोस्वामीके स्वप्नानुग्रहमें विलक्षण साम्य है। महीपतिबाबा कहते हैं कि श्रीपाण्डुरङ्गने बाबाजी चैतन्यके रूपमें तुकारामजीपर अनुग्रह किया और 'स्वानुभवदिनकर' यह बतलाया है कि श्रीरामचन्द्रने रामदासके रूपमें दिनकर गोस्वामीपर अनुग्रह किया। तुकारामजीके गुरु बाबाजी चैतन्य उनपर अनुग्रह करनेके कितने ही वर्ष पहले समाधिस्थ हो चुके थे, और सोते-जागते पाण्डुरङ्गकी ओर ही तुकारामजीकी आँखें लगी थीं। इस कारण तुकारामजीको पाण्डुरङ्गके इस प्रकार दर्शन हुए; और दिनकर गोसाईंको स्वप्नमें देखी हुई मूर्तिको जागते हुए प्रत्यक्ष देखनेकी ही लगी हुई थी, इस कारण ठीक एक वर्ष पूरा होते ही श्रीगुरु-मूर्ति उनके सामने प्रत्यक्षमें प्रकट हुई। इन दोनों उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि जिसे जिसकी लगन लगती है उसे उसके स्वप्नमें और जागृतिमें भी दर्शन होते हैं। यह क्या चमत्कार है अथवा किस प्रकार महात्मा लोग दूसरोंके स्वप्नमें प्रवेशकर उन्हें ज्ञानदान कर आते हैं यह हमारे-जैसे प्राकृत जीव भला कैसे समझ सकते हैं? पर तुकाराम और दिनकर गोसाईं-जैसे निष्काम भगवद्भक्त जब यह बतलाते हैं कि स्वप्नमें गुरुने दर्शन देकर हमें उपदेश दिया तब उसपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। ऐसी बातोंमें विश्वासके बिना प्रतीति नहीं होती और प्रतीतिके बिना विश्वास भी नहीं होता, इसलिये भावुकजन पहले विश्वास करते हैं, पीछे उनके पूर्वभाग्यसे अथवा भगवत्कृपा-बलसे प्रतीतिका समय भी कभी-न-कभी आता है। स्वप्नमें ही क्यों, गर्भतकमें उपदेश दिये जानेकी कथाएँ हमारे पुराणोंमें हैं। इन कथाओंको मिथ्या तो नहीं कह सकते। महात्मा चारों देहोंसे अलग और पूर्ण स्वाधीन होनेके कारण चारों देहोंपर उनका हुक्म चलता है। वे इन देहोंके मालिक होते हैं, अर्थात् चाहें जो देह वे जब चाहें धारण कर सकते हैं और चाहे जिस देहको जब चाहें छोड़ सकते हैं। बाबाजी चैतन्यने स्थूल देहका त्याग करनेके पश्चात् भण्डारा-पर्वतपर आत्मोद्धारके लिये सतत छटपटानेवाले तुकारामको शुद्धचित्त और अधिकारी जानकर उनपर अनुग्रह किया और जो उपासना वह कर रहे थे उसीको आगे

भी करते रहनेके लिये प्रोत्साहित किया। इस प्रकारका प्रोत्साहन श्रेष्ठ कोटिके जीवोंसे कनिष्ठ कोटिके जीवोंको मिला करता है। सच पूछिये तो गुरु और शिष्यके बीच ऊँच-नीचका कोई भेद-भाव बाकी नहीं रहता। जैसे दो तालाब पास-पास लबालब भरे हुए हों और इनमेंसे पहले किसी एकका पानी दूसरेमें आ जाय और उस एकको दूसरा गुरुत्वका मान प्रदान करनेकी तैयारी करे न करे इतनेमें ही दोनोंकी लहरें एक-दूसरेमें आने-जाने लगें और दोनों मिलकर एक महासरोवर बन जायँ, वैसा ही कुछ गुरु-शिष्यका सम्बन्ध होता है। दोनों एक दूसरेसे मिलकर एक हो जाते हैं। शिष्य गुरु-पदपर कब आरूढ़ होता है और कब दोनों एक हो जाते हैं यह बतलानेमें जितना समय लग सकता है उतना समय भी दोनोंके एक होनेमें नहीं लगता। '**उद्धरेदात्मनात्मानम्**' ही सत्य है, तथापि सबके ऊपर मुहर गुरुकी ही लगती है। साधक जिस साधन-मार्गसे जा रहा हो उस मार्गपर चलते हुए उसे किसी ऐसे मार्गदर्शक पुरुषकी आवश्यकता होती है जिसने वह मार्ग देखा हो, जो उस मार्गके अन्तिम गन्तव्य स्थानतक हो आया हो। वही गुरु है। उसके मिलनेसे मोक्ष-मार्गके पथिकका ढाढ़स बँधता है, उसे यह निश्चय हो जाता है कि हम जिस रास्तेपर चल रहे हैं वह रास्ता गलत नहीं है। मोक्ष-मार्गमें ऐसे अनेक गुरु मिल जाते हैं। साधु-सन्त ऐसे ही मार्गदर्शक होते हैं। अन्तमें जो गुरु मिलते हैं वह इसे पूर्णकाम करके अनुभव-सुख इसके पल्ले बाँधकर इसे पूर्ण बनाते हैं, वही सद्गुरु हैं। सद्गुरुका कार्य अत्यल्प पर अत्यन्त उपकारक होता है। वह जीवात्माको शिवात्मासे मिला देते हैं।

८-गुरु-नाम बारम्बार क्यों नहीं?

इस विषयमें अब कोई सन्देह नहीं रह गया है कि तुकारामजीके गुरु बाबाजी चैतन्य थे। तुकारामजीने स्वयं ही कहा है—'**बाबाजी सद्गुरु दास तुका।**' ज्ञानदेव, नामदेव और एकनाथके ग्रन्थोंमें बार-बार जैसे गुरुका नाम आता है वैसे तुकारामके अभंगोंमें नहीं आता, यह बात सही है पर इससे किसी-किसीका जो यह खयाल होता है कि तुकारामने कोई गुरु ही नहीं किया, किसी गुरुसे उपदेश नहीं लिया अथवा भगवान्ने ही उन्हें स्वप्न देकर अपना नाम बाबाजी चैतन्य बता दिया, यह खयाल बिलकुल गलत है। एक अभंगमें तुकारामजीने कहा है, 'सद्गुरुसेवन जो है वही अमृतपान है' और

एक दूसरे अभंगमें उन्होंने स्पष्ट ही कहा है—'गुरु-कृपाका ही बल था जो पाण्डुरंगने मेरा भार उठा लिया।' (**तुका म्हणे गुरु कृपेचा आधार। पांडुरंगें भार घेतला माझा॥**) गुरुकी आज्ञा और तुकारामजीके मनकी पसन्द एक रूप हुई, ध्याननिष्ठा दृढ़ हुई, नाम-सङ्कीर्तन-साधन स्थिर हुआ। गुरूपदेश उन्हें स्वप्नमें मिला, इससे अन्य सन्तोंके समान उन्हें गुरुका सङ्गलाभ नहीं हुआ। ज्ञानेश्वरके सामने निवृत्तिनाथकी, नामदेवके सामने विसाजी खेचरकी और एकनाथके सामने जनार्दनस्वामीकी मूर्ति अहोरात्र क्रीडा कर रही थी। गुरुके साथ सम्भाषण करनेका सुख इन संतोंने खूब लूटा। उनके दर्शन, स्पर्शन और पदसेवनका नित्य आनन्द प्राप्त करने और उनके शुद्ध स्वरूपको जाननेका परम मङ्गल-अवसर इन्हें नित्य ही मिलता था। प्रतिक्षण उन्हें प्रतीति होती थी कि निर्गुण ब्रह्म ही गुरुरूपमें सगुण होकर आये हैं। तुकारामजीको गुरूपदेश स्वप्नमें मिला। उस समय गुरुने उनसे पावभर घी माँगा था; पर तुकारामजीको उसकी सुध न रही और आगे भी गुरु-सेवाका कोई अवसर नहीं मिला। गुरु भी पाण्डुरंगका ही ध्यान करनेको बताकर गुप्त हो गये। इसी कारणसे तुकारामजीके अभंगोंमें गुरु-वर्णन नहीं हुआ है और गुरु का नामोल्लेख भी दो ही चार बार हुआ है। गुरूपदेशके पश्चात् उन्होंने पाण्डुरंगका जो ध्यान किया, उन्हें जो सगुण-साक्षात्कार और निर्गुण-बोध हुआ वह सब गुरुके उपदिष्ट मार्गपर चलनेसे ही हुआ, पाण्डुरंग-स्वरूपमें ही गुरुस्वरूप मिल गया और गुरुकी आज्ञासे ही पाण्डुरंगकी सेवा की गयी, इस कारण पाण्डुरंगकी भक्तिमें ही गुरु-भक्ति भी हो गयी। इसीलिये तुकारामजीके अभंगोंमें गुरुका नामोल्लेख बहुत कम हुआ है। तथापि जितनेमें ऐसे उल्लेख हैं उनसे यही निश्चित होता है कि तुकारामजीको स्वप्नमें बाबाजी चैतन्यने गुरूपदेश दिया। गुरूपदेश स्वप्नमें ही हुआ करता है! स्वरूप-जागृति होनेपर उपदेशकी आवश्यकता नहीं रहती और मोह-निद्रामें जब जीव रहता है तब उसे उपदेशकी इच्छा ही नहीं होती; अर्थात् मुक्तावस्था और वृद्धावस्था ये दोनों अवस्थाएँ गुरूपदेशके लिये उपयुक्त नहीं। गुरूपदेश उसी मुमुक्षावस्थाके लिये है जब जीव न तो आत्मस्वरूपमें जाग रहा है, न विषयोंकी मोह-निद्रामें सो रहा है, अर्थात् मध्यम स्वप्नकी अवस्थामें है।

१-गुरु-चैतन्यत्रयी

जिन बाबाजी चैतन्यने तुकारामजीको स्वप्नमें उपदेश दिया उनके विषयमें और भी कुछ ज्ञात होता तो अच्छा होता पर दुर्भाग्यवश ऐसी कोई बात नहीं ज्ञात होती। दो-चार कथाएँ उनके विषयमें प्रसिद्ध हैं पर उनमें परस्पर विरोध ही अधिक है। इसलिये ऐसे टूटे-फूटे, अधूरे और परस्पर-विरोधी आधारपर तर्कसे चरित्रकी हवेली उठाना ठीक नहीं। संत-चरित्र कोई कपोल-कल्पित उपन्यास् नहीं है, आधारके बिना यहाँ कोई बात नहीं कही जा सकती। माघ शुक्ला दशमीको तुकारामजीको गुरूपदेश मिला, इसलिये वारकरी-मण्डल इस तिथिको विशेष पवित्र मानता है और उस दिन स्थान-स्थानमें भजन-पूजन-कीर्तनादिद्वारा उत्सव मनाया जाता है, यही एक बात प्रस्तुत प्रसङ्गमें निश्चित है। तुकारामजीके गुरु कौन थे, कहाँ रहते थे, वह समाधिस्थ कब हुए, इनकी पूर्वपरम्परा क्या थी? इत्यादिके बारेमें वारकरियोंको कुछ भी ज्ञात नहीं है और इस विषयमें कोई ग्रन्थ भी नहीं मिला है। स्वप्नमें थोड़ी देरके लिये गुरुके दर्शन हुए और उन्होंने उपदेश दिया, '**राघव चैतन्य केशव चैतन्य**' कहकर पूर्वपरम्पराका संकेत किया और अपना नाम 'बाबाजी' बताया, तुकारामजीको '**राम-कृष्ण-हरी**' मन्त्र दिया जो उन्हें प्रिय था और फिर अन्तर्धान हो गये। बस, इतना ही बाबाजी चैतन्यके विषयमें प्रमाण है, इसके अतिरिक्त और कोई विश्वसनीय बात नहीं ज्ञात होती। '**मानियेला स्वप्नीं गुरूचा उपदेश**' (स्वप्नमें गुरुका उपदेश माना), तुकारामजीके इस कथनसे यह नहीं जान पड़ता कि उनके गुरु फिर कभी उनसे स्वप्नमें या जागतेमें मिले हों अर्थात् तुकारामजीको गुरुसे इस उपदेशके बाद और भी कुछ मिला यह नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्थामें तुकारामजीके गुरुके विषयमें चरित्रकार भी और क्या लिख सकता है? इसके सिवा अन्य बातोंपर स्वयं मेरा विश्वास नहीं है, वारकरियोंका भी विश्वास नहीं है तथा उनकी कोई आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती, यह स्पष्ट बतलाकर अब उन कथाओंको भी जरा देख लें जो बाबाजी चैतन्यके विषयमें प्रसिद्ध हुई हैं।

'चैतन्यकथाकल्पतरु' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। यह ग्रन्थ निरञ्जन बुवा नामक किसी पुरुषनें संवत् १८४४ (शाके १७०९) प्लवङ्ग नाम संवत्सरमें लिखा और कार्तिक शुक्ल एकादशीको लिखकर पूर्ण किया। इसमें

राघव चैतन्य और केशव चैतन्यके विषयमें कुछ बातें हैं। ग्रन्थके अन्तमें यह कहा है कि यह ग्रन्थ एक प्राचीनतर ग्रन्थके आधारपर लिखा है; वह प्राचीनतर ग्रन्थ 'संवत् १७३१ (शाके १५९६) में परम भक्त कृष्णदास वैरागीने लिखा।' इन कृष्णदास वैरागीका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिससे यह ग्रन्थ मिलाकर देखा जाय। अस्तु, निरञ्जन बुवाके इस ग्रन्थमें ६ अध्याय और ७६० ओवियाँ हैं। इसमें तुकारामजीकी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है—श्रीविष्णु—ब्रह्मदेव—नारद—व्यास—राघवचैतन्य—केशवचैतन्य उर्फ बाबाजी चैतन्य—तुकाजी चैतन्य। राघव चैतन्यको स्वयं वेदव्यासने उपदेश दिया। राघव चैतन्यने 'उत्तम नाम नगरमें माण्डवीपुष्पावतीके तीरपर' बहुत कालतक तप किया। 'हाथ-पैरके नखोंकी नालियाँ बन गयीं; शरीरपर धूलके तह-के-तह जमा हो गये, जटा बढ़कर पृथ्वीको छूने लगी, शरीर सूख गया।' ऐसा तीव्र तप देखकर श्रीवेदव्यास प्रकट हुए और उन्होंने उन्हें प्रणवके साथ '**नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका उपदेश दिया। उत्तम-नगरका आधुनिक नाम ओतुर है। यह गाँव पूना-जिलेमें जुन्नरसे चार कोसपर है। वहाँसे चार मीलपर पुष्पावती उर्फ कुसुमावती और कुकडीनदीका सङ्गम है। राघव चैतन्यको ओतुर ग्राममें गुरूपदेश प्राप्त हुआ। उनको राघव चैतन्य नाम गुरुका ही दिया हुआ था। गुरूपदेशके पश्चात् राघव चैतन्यने और भी तीव्र तप किया। कुछ काल पश्चात् वहाँ तृणामल्ल (तिनेवल्ली?) के देशपाण्डे नृसिंह भट्टके द्वितीय पुत्र विश्वनाथबाबा उनसे मिले। नृसिंह भट्ट बड़े कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। तृणामल्लका शिवालय यवनोंने भ्रष्ट किया तब नृसिंह भट्ट वहाँसे चलते बने और घूमते-फिरते पुनवाडी (तत्कालीन पूना) पहुँचे। वहाँ वह अपनी सहधर्मिणी आनन्दीबाईके साथ सुख-पूर्वक काल व्यतीत करने लगे। इनके तीन पुत्र हुए—त्र्यम्बक, विश्वनाथ और बापू। नृसिंह भट्टका जब देहान्त हुआ तब तीनों पुत्रोंमें कलह हो गया। विश्वनाथ 'उदासीन थे, त्रिकाल स्नान-संध्या करते थे, धर्ममें बड़े उदार थे पर घरका काम कुछ भी न देखते थे।' उनके दोनों भाइयोंने सलाह करके उन्हें घरसे निकाल दिया। विश्वनाथबाबाकी सहधर्मिणी गिरजाबाई भी अपने पतिके साथ हो लीं। पति-पत्नी तीर्थयात्रा करते हुए ओतुर ग्राममें आये। दोनों ही विपत्तिके मारे भटक रहे थे। प्रारब्ध-बलसे वहाँ राघव चैतन्यसे उनकी भेंट हो गयी और राघव चैतन्यने उनपर कृपादृष्टि की।

विश्वनाथबाबा ऋग्वेदी ब्राह्मण थे। संसारमें इन्होंने बहुत दु:ख उठाया। भाइयोंने इन्हें घरसे निकाल दिया। स्त्रीने भी इन्हें दरिद्र पाकर कठोर वचन सुनानेमें कुछ कमी न की। 'सोहागके पूरे अलङ्कार भी इनके जुटाये न जुटे, कभी कोई अच्छी-सी साड़ीतक नहीं ला दी, आधी घड़ी भी कभी इनके साथ सुखसे नहीं बीता।' यही उसका रोना था। सुनते-सुनते विश्वनाथबाबाके कान थक गये। राघव चैतन्यके दर्शन पाकर वह उनकी शरणमें गये। उस समय उनकी आयु २५ वर्ष थी। कुछ काल बाद इनके एक पुत्र हुआ। उसका नाम नृसिंह भट्ट रखा गया। 'स्त्रीके ऋणसे इस प्रकार उद्धार हुआ और चित्त भी शुद्ध हो गया' तब विश्वनाथबाबाने गुरुसे संन्यास-दीक्षा माँगी। गुरुने उन्हें संन्यास दिया और उनका नाम केशव चैतन्य रखा। गुरु और शिष्य दोनों ही ओतुर ग्रामसे कुछ दूर एक वनमें जा बसे और वहाँ ब्रह्मानन्द भोगने लगे। कुछ काल बाद दोनों ही तीर्थयात्राके लिये निकले। नासिक, त्र्यम्बकेश्वर, द्वारका, प्रयाग, काशी, जगन्नाथ आदि क्षेत्रोंकी यात्रा करते हुए कलबुर्गा पहुँचे। वहाँ जलकी अतिवृष्टिसे त्रस्त होकर वे एक मसजिदमें पहुँचे। वहाँ भीतके एक बीचके आलेमें उन्होंने अपनी खड़ाऊँ रखी, उस मसजिदके मुल्लाने आकर जब देखा कि खड़ाऊँ आलेमें रखी हैं तब उन यात्रियोंपर बेतरह बिगड़ा। उसने शहरके काजीसे इसकी फरियाद की। बात निजामशाहके कानोंतक पहुँची और उस गाँवके छोटे-बड़े सभी मुसलमानोंके आग लग गयी। और जहाँ-तहाँ बिना कारण ब्राह्मणोंपर अत्याचार होने लगे। स्वयं निजाम मसजिदमें पहुँचे। कहते हैं, उस अवसरपर उन दो यतियोंने कोई सङ्केत किया जिसके करते ही मसजिद जो उड़ी सो वहाँसे आध मीलपर जाकर ठहरी। यह चमत्कार देखकर निजाम चकित हुए और यह विश्वास हुआ कि ये दोनों फकीर कोई बड़े पीर हैं, तत्काल ही दोनों यति अन्तर्धान हो गये। निजाम उनसे मिलनेके लिये बहुत व्याकुल हुए। आलन्दगुञ्जोटी नामक स्थानमें निजामको उनके दर्शन हुए। निजामने अभय-दान माँगा। यतियोंने उन्हें अभयवचन दिया। निजामने इन यतियोंके सम्मानार्थ उस मसजिदमें दो स्मारक बनवाये और उनपर राघवदराज और केशवदराज नाम खुदवाये! राघव चैतन्य इस घटनाके कुछ काल बाद ही लोकोपाधिसे छूटनेकी इच्छा करते हुए समाधिस्थ हुए। उन्होंने अपने शिष्यको ओतुर जानेकी आज्ञा दी। राघव चैतन्यकी

समाधि आलन्दगुञ्जोटीमें है। वहाँसे तीन कोसपर मान्यहाल नामक ग्राममें केशव चैतन्यने अपने लिये एक मठ बनवाया और कुछ कालतक इस मठमें रहे। यहाँ रहते हुए वह बार-बार गुरु-समाधिके दर्शनोंके लिये आलन्दगुञ्जोटी जाया करते थे। राघव चैतन्य बड़े रूपवान् पुरुष थे। उनके दिव्य रूपका कविने वर्णन किया है कि 'चन्द्रके समान सुन्दर मुख था, उसपर हेमवर्ण जटा सोहती थी, सर्वाङ्गमें भस्म रमाये रहते थे, बड़ी ही सुन्दर दिगम्बर मूर्ति थी।' केवल चैतन्य पीछे वहाँसे ओतुर चले गये। उनके शिष्योंने मान्यहाल ग्राममें उनकी पादुका स्थापित की। यही केशव चैतन्य तुकोबारायके गुरु थे। बाबाजी इनका पूर्वाश्रमका नाम था। इस ग्रन्थके तीसरे अध्यायके अन्तमें कहा है, 'सब लोग इन्हें केशव चैतन्य कहते हैं, भावुक बाबा चैतन्य कहते हैं; दोनों नाम एक ही हैं जो अति आदरके साथ लिये जाते हैं।' अन्तिम अध्यायमें पुनः यह उल्लेख है कि 'पूर्वाश्रममें बाबा भी कहते थे।' पहले तीन अध्यायोंमें यह विवरण है। इसके बाद चौथे और पाँचवें अध्यायमें केशव चैतन्यके चरित्रकी कुछ बातें कहकर छठेमें तुकारामजीको गुरूपदेश प्राप्त होनेकी बात उनके अल्प चरित्रके साथ कही गयी है। केशव चैतन्यके पुत्र नृसिंह भट्ट और नृसिंह भट्टके पुत्र केशव भट्ट हुए। केशव चैतन्यने केशव भट्टपर अनुग्रह किया और जगदुद्धारके लिये अनेक चमत्कार भी दिखाये। केशव चैतन्यने संवत् १६२८ (शाके १४९३) प्रजापतिनाम संवत्सरमें ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशीको ओतुर ग्राममें समाधि ली। समाधि लेनेके पश्चात् भी उन्होंने अनेक चमत्कार किये। अपने पूर्वाश्रमके पोते केशव भट्टको सम्पूर्ण भागवत सुनायी। समाधि लेनेके पश्चात् ही वह काशीमें प्रकट हुए और एक ब्राह्मणपर कृपा की। इसी प्रकार कई वर्ष बाद तुकारामजीको स्वप्न देकर उन्होंने गुरूपदेश दिया। निरञ्जन बुवाने राघव चैतन्य और केशव चैतन्यके बारेमें जो कुछ लिखा है यहाँतक उसीका सारांश हमने बताया है। इसके सत्यासत्यकी जाँचका और कोई साधन अबतक उपलब्ध नहीं हुआ है। कृष्णदास वैरागीके जिस ग्रन्थके आधारपर निरञ्जन बुवाने अपना ग्रन्थ लिखा, वह ग्रन्थ संवत् १७३१ में लिखा होनेसे अर्थात् तुकाराम महाराजके प्रयाणके पचीस वर्ष बादका ही लिखा हुआ होनेसे बहुत कुछ प्रमाणभूत हो सकता था पर वह आज उपलब्ध न होनेसे 'चैतन्यविजय-कल्पतरु' ग्रन्थकी कौन-सी बात कृष्णदास लिख गये हैं और कौन-सी बात

निरञ्जन बुवा किसी अन्य आधारपर कह रहे हैं यह जाननेका इस समय कोई साधन नहीं है।

श्रीराघव चैतन्य सिद्ध पुरुष थे और श्रीकृष्णके परम भक्त थे। इसमें सन्देह नहीं। हमारे गोमान्तकस्थ मित्र श्रीविट्ठलराय कामतने उनका अत्यन्त मधुर श्लोक दस वर्ष पहले हमारे पास भेजा था—

पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां
मूर्तीभूतं भागधेयं यदूनाम्।
सान्द्रीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां
श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम्॥

'गोपियोंके पुञ्जीभूत प्रेम, यादवोंके मूर्तिमान् भाग्य, श्रुतियोंके एकत्र घनीभूत गुप्त धन, ऐसे जो मेरे साँवरे ब्रह्म हैं वह निरन्तर मेरे समीप रहें।'

राघव चैतन्यकी और भी कुछ कविताएँ हैं ऐसा सुना है। केशव चैतन्यका एक पद मुझे बहिणाबाईकी गाथामें मिला। उसका आशय यह है कि 'विषयोंके लोभसे मन भटक रहा है; गृह, पुत्र, कलत्रमें ही सुख मान बैठा है। पर अब इसका दु:ख मुझसे नहीं सहा जाता, इसलिये हे कमलापति हरि! आपसे विनय करता हूँ। हे दीनानाथ, दीनबन्धु! आपकी शरणमें हूँ। इस भवसागरको पार करनेका कोई उपाय नहीं दीखता। साधु-सङ्ग या साधु-सेवा मुझसे कुछ भी न बन पड़ी, शिश्नोदर-व्यापारके ही प्रवाहमें बहता रहा हूँ। अब इसमेंसे हे भगवन्! मुझे उबारो। हे दीनानाथ! दीनबन्धु! मैं आपकी शरणमें हूँ। मुझे चित्त-शुद्धिका रास्ता दिखाओ, वेद-शास्त्र-पुराणोंकी गति सुझाओ, निरन्तर नवविधा भक्तिमें लगाओ, इसीमें आपकी भी शोभा है। हे दीनानाथ! दीनबन्धु! मैं आपकी शरणमें हूँ।'

१०-बंगालके चैतन्य-सम्प्रदायसे सम्बन्ध नहीं

कुछ लोग बंगालके श्रीकृष्णचैतन्य-सम्प्रदायके साथ श्रीतुकारामजीका सम्बन्ध जोड़ते हैं, परन्तु यह मान्यता ठीक नहीं जान पड़ती। बंगालमें श्रीकृष्णचैतन्य या गौराङ्ग प्रभु पंद्रहवीं शताब्दीमें विख्यात श्रीकृष्ण-भक्त हुए। बंगालमें उन्होंने श्रीकृष्ण-भक्तिका प्रचार किया और आज भी बंगालमें श्रीकृष्णका नाम जो इतना प्यारा है वह उन्हींके प्रभावका फल है। श्रीचैतन्य

महाप्रभुका अत्यन्त प्रेम-रसभरित चरित्र अंग्रेजी भाषामें स्वर्गीय शिशिरकुमार घोषने लिखा है। अंग्रेजी जाननेवाले पाठक उसे अवश्य पढ़ें। उस ग्रन्थके २६२ वें पृष्ठपर (सन् १८९८ ई० का संस्करण) शिशिर बाबू लिखते हैं—'पूनाके संत तुकाराम गौराङ्ग प्रभुके अथवा उनके शिष्यके शिष्य थे, यह बतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं अर्थात् यह बात स्पष्ट ही है।' इस बातके समर्थनमें उन्होंने ये बातें लिखी हैं कि गौराङ्ग प्रभु पण्ढरपुर होकर गये थे, पण्ढरपुरमें तुकारामजी रहते थे, गौराङ्ग प्रभु स्वप्नमें उपदेश दिया करते थे, इत्यादि। इन बातोंसे कुछ लोगोंकी यह धारणा हो गयी है कि स्वयं गौराङ्ग प्रभु अथवा उनके किसी शिष्यसे तुकारामजीने उपदेश ग्रहण किया था। परंतु बंगालके चैतन्यसम्प्रदायके साथ तुकारामजीका कुछ भी सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता। तुकारामजीका जिस समय जन्म हुआ उस समय कृष्ण चैतन्यको समाधिस्थ हुए ७५ वर्ष बीत चुके थे। चैतन्य प्रभुका समय संवत् १५४२—१५९० है, इसके ७५ वर्ष बाद तुकाजीका जन्म हुआ कृष्ण चैतन्य ही बाबा चैतन्य होकर तुकारामजीको स्वप्नमें उपदेश दे गये, ऐसा कहें तो कृष्ण चैतन्यकी पूर्वपरम्परा वही होगी। जो बाबाजी चैतन्य तुकारामजीसे कह गये अर्थात् राघव चैतन्य और केशव चैतन्य। पर यह बात किसीको स्वीकार न होगी। इसलिये यह बात भी नहीं मानी जा सकती कि श्रीचैतन्य तुकारामजीके गुरु थे। अब यदि कोई यह कहे कि राघव चैतन्य ही कृष्ण चैतन्यके शिष्य थे तो श्रीकृष्ण चैतन्यके प्रसिद्ध शिष्योंमें राघव चैतन्य नामके कोई भी शिष्य नहीं हैं और इस बातका कहीं कोई प्रमाण नहीं है कि राघव चैतन्यके गुरु कृष्ण चैतन्य थे। इसलिये कृष्ण चैतन्य अथवा उनके कोई शिष्य तुकारामजीके गुरु थे, यह बात प्रमाणित नहीं होती। फिर दूसरी बात यह है कि बंगाल-उत्कलमें श्रीकृष्ण चैतन्यका जो सम्प्रदाय है वह मध्वाचार्यके द्वैत-सम्प्रदायसे निकला है। इस सम्प्रदायमें राधा-कृष्णकी भक्ति प्रधान है। तुकारामजीकी उपासनामें अथवा यह कहिये कि महाराष्ट्रके किसी भी भक्तकी उपासनामें राधाकी विशेष महिमा नहीं है। तुकारामजीका भक्तिमार्ग भी द्वैत नहीं, अद्वैत है। तुकारामजीके अभंगोंमें अद्वैत-सिद्धान्त स्पष्ट ही है। इसलिये किसी भी द्वैत-सम्प्रदायके साथ तुकारामजीका नाता नहीं जोड़ा जा सकता। चैतन्य-सम्प्रदाय और महाराष्ट्रीय

भागवत-सम्प्रदाय दोनों ही कृष्ण भक्तिके सम्प्रदाय हैं सही, पर चैतन्य-सम्प्रदायकी कोई भी विशिष्टता तुकारामजीके अभंगोंमें नहीं है और महाराष्ट्रीय भागवत-धर्मके प्रवर्तक ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथादि कृष्ण-भक्तोंके आचार-विचारोंसे रत्तीभर भी भिन्नता तुकारामजीके चरित्र और अभंगोंमें नहीं है। फिर ऐसी कौन-सी बात है जिससे यह कहा जा सके कि उनके चित्तपर जो संस्कार थे वे महाराष्ट्रके नहीं, महाराष्ट्रसे बाहरके थे? ऐसी निराधार बात कहनेमें हेतु भी क्या हो सकता है? बंगालके श्रीकृष्ण चैतन्यके प्रति हमारा पूर्ण प्रेम और आदर है पर यह भी स्पष्ट बतला देना आवश्यक है कि चैतन्य-सम्प्रदायके साथ उनका कुछ भी लगाव मानना सर्वथा निराधार है। कृष्ण-भक्तिके वैष्णव-सम्प्रदाय भारत वर्षमें अनेक हैं पर प्रत्येक सम्प्रदायकी अपनी कोई-न-कोई विशिष्टता है। पण्ढरपुरके वैष्णव-सम्प्रदायकी भी कुछ विशिष्टता है। यह विशिष्टता पहले ज्ञानेश्वरीमें प्रकट हुई और उसी लकीरपर नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि सभी संत चले हैं। इन सबकी सब बातोंमें एक मति है। महाराष्ट्रीय स्वभावमें जो एक प्रकारकी दृढ़ता है, एक प्रकारका ऐसा अपमान है कि अपना छोड़ना नहीं और दूसरेका सहसा लेना नहीं और तुकारामजीके स्वभावमें भी मराठोंकी जो लगन और तेजी है उसको देखते हुए भी बंगालके चैतन्य-सम्प्रदायके साथ तुकारामजीका कुछ भी मेल नहीं बैठता।

११-कवित्व-स्फूर्ति

तुकारामजीने आत्मचरितके अभंगोंमें यह कहा है कि स्वप्नमें गुरूपदेश होनेके पश्चात् ही मुझे कवित्व-स्फूर्ति हुई, यह पाठकोंको स्मरण होगा। तुकारामजीकी इस उक्तिसे ही यह स्पष्ट है कि गुरूपदेशके पूर्व उन्होंने कोई कविता नहीं की। यह कवित्व-स्फूर्ति उन्हें नामदेवकी प्रेरणासे हुई। व्युत्पत्तिके बलपर कविता करनेवाले कवि बहुत होते हैं पर प्रसादगुण दैवी स्फूर्तिके बिना नहीं उत्पन्न होता। तुकारामजीको कवित्व-स्फूर्ति कैसे हुई, इस विषयमें उनके दो अभंग हैं। एकमें तुकाराम कहते हैं कि 'नामदेव पाण्डुरङ्गके साथ स्वप्नमें आये और यह काम बता गये कि कविता करो, वाणी व्यर्थ व्यय

न करो, तुले हुए शब्दोंमें कविता किये चलो, तुम्हारा अभिमान श्रीविट्ठलनाथने ओढ़ लिया है। यह कहकर उन्होंने मुझे सावधान किया। नामदेवने शतकोटि अभंगोंकी संख्या पूर्ण करनेको कहा, जो अभंग उन्होंने रचे थे उनसे जो बाकी रहे वे मैंने पूरे किये।' दूसरे अभंगमें तुकारामजीने भगवान्‌से प्रार्थना की है कि 'हे भगवन्! आप मुझे अपनी शरणमें लेंगे तो मैं आपके सङ्ग, संतोंकी पंक्तिमें आपके चरणोंके पास रहूँगा। कामनाका ठाँव छोड़कर आया हूँ, अब मुझे उदास मत करो। आपके चरणोंमें सबके आखीरमें भी मुझे स्थान मिले तो भी सन्तोष है। मेरी चित्तवृत्ति अभी मलिन है। आपका आधार मिलनेसे मुझे विश्रान्ति मिलेगी। नामदेवकी बदौलत तुकाको स्वप्नमें भगवान् मिले। वही प्रसाद चित्तमें भरा हुआ है।'

दोनों अभंगोंका स्पष्टार्थ ऊपर दे दिया है। उससे यही समझ पड़ता है कि तुकारामजीको स्वप्नमें पाण्डुरङ्ग और नामदेवके दर्शन हुए और नामदेवने भगवान्‌के सामने तुकारामजीसे कहा कि अब लोगोंसे तुम व्यर्थकी बातचीत करनेमें अपनी वाणी मत खर्च करो, कविता करो; मुखसे अभंग-पर-अभंग निकालते चलो, पाण्डुरङ्गने तुम्हारा अभिमान ओढ़ लिया है, वह सदा तुम्हारे पीछे खड़े रहेंगे और तुम्हारी वाणीमें प्रेम, प्रसाद, स्फूर्ति भरते रहेंगे। नामदेवने शतकोटि अभंग रचनेका संकल्प किया था पर यह संकल्प पूरा होनेमें कुछ कसर रह गयी थी, वह तुकारामजीने पूरी की। इस प्रकार शतकोटि संख्या*

---

* महीपतिबावाने 'भक्तलीलामृत' अ० ३२ में शतकोटि संख्याका हिसाब यों दिया है—नामदेवने चौरानबे कोटि चालीस लाख अभंग रचे, पीछे नौ लाख अभंग ललितके रचे और बाकी पाँच कोटि इक्कावन लाख अभंग रचनेको तुकारामसे कहा। तुकारामजीके मुखसे कुल कितने अभंग निकले, इसकी गणना करना असम्भव है। इस सम्बन्धमें दो अभंग प्रसिद्ध हैं 'वेदाचे अभंग केले श्रुतिपर' यह अभंग इन्दुप्रकाश-गाथाके चरित्र-भागमें है। इसमें यह कहा है कि तुकारामजीने एक कोटि अभंग भक्तिपरक, एक कोटि ज्ञानपरक, एक कोटि अनुभवपरक, पचहत्तर लाख वैराग्यपरक, पचहत्तर लाख नामपरक—इस प्रकार साढ़े चार कोटि और साठ हजार उपदेशपरक, साठ हजार रूपवर्णनपरक तथा कुछ श्रुति, आत्मबोध आदिपर रचे। कुल हिसाब इसमें

पूर्ण हुई। दूसरे अभंगमें तुकारामने भगवान्‌से जो प्रार्थना की है उसमें तुकाराम अपनी यही इच्छा प्रकट करते हैं कि 'भगवान् मुझे अपने चरणोंमें शरण दें और मैं ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, कबीर आदि महात्माओंका सत्सङ्ग लाभ करूँ, उनके अनुभवोंको अनुभव करूँ, उन्हींके साथ रहूँ चाहे उनकी पंक्तिमें मुझे सबके बाद ही स्थान मिले, क्योंकि वे पुण्यपुञ्ज सिद्ध महात्मा हैं और मेरी चित्तवृत्ति अभी मलिन है। पर भगवन्! आपका और इन संतोंका आश्रय मिलनेसे मेरी मति शुद्ध हो जायगी और मैं आपके निजरूपमें समरस होकर परमानन्द प्राप्त करूँगा।' स्वप्नमें भगवान् मिले, इसके लिये तुकाराम नामदेवके कृतज्ञ हैं, कहते हैं कि नामदेवकी ही यह कृपा है जो स्वप्नमें भगवान् मिले। स्वप्नसे जागनेपर तुकारामजीने इस स्वप्नको अन्य स्वप्नोंके सदृश मिथ्या नहीं माना। वह सत्य-स्वप्न था, भगवान् और भक्तके मिलनकी वह एक विशेष अवस्था थी और तुकारामजीने यह अनुभव किया कि उस मिलन और भगवत्कृपाका आनन्द स्वप्नके बाद भी हृदयमें भरा हुआ है। तुकारामजीने यह जाना कि सचमुच ही भगवान्‌का अनुग्रह हुआ है?

पाँच कोटि सत्तर लाखका दिया है। इसके सिवा एक अभंग मुझे और मिला है जिसमें यह कहा है कि तुकारामजीने सात कोटि अभंग रचे जिनमेंसे साढ़े छः कोटि स्वयं गणेशजीने अपने हाथसे लिखे! यह जो कुछ हो, इस समय हमारे लिये तो तुकाराम महाराजके साढ़े पाँच हजार ही अभंग बचे हैं।

आठवाँ अध्याय
चित्तशुद्धिके उपाय

तुका मन राखो, अंकुस-अधीन।
प्रतिदिन नवीन, जागरण॥ १॥

* * *

एकांतमें बैठ, शुद्ध करो चित्त।
सो सुख अनंत, पार नाहीं॥ १॥
आयके हियमें, रहेंगे गोपाल।
साधन सुफल, घर बैठे॥ २॥

१-अध्यात्म-सार

जीव ब्रह्म ही है, ब्रह्मसे भिन्न नहीं। और यही यदि शास्त्रका सिद्धान्त और संतोंका अनुभव है तो इसकी प्रतीति सब जीवोंको क्यों न हो? ब्रह्म सर्वगत और सदा सम है; परमात्मा समीप अन्तरमें हैं, भूतमात्रके हृदयमें हैं, वह सर्वभूतान्तरात्मा हैं, सर्वव्यापी और सर्वसाक्षी हैं; जलमें, थलमें, काष्ठ और पाषाणमें सर्वत्र रम रहे हैं, उनसे कोई स्थान खाली नहीं; यह यदि सत्य है तो सबको सब समय वह सुलभ क्यों नहीं होते? वह परमात्मसुख 'यदि पवित्र और रम्य, वैसे ही सुखोपाय सुगम्य और सुसुख परम धर्म्य है' (ज्ञानेश्वरी अ० ९।५५) तो सब जीव उसीपर क्यों नहीं टूट पड़ते? कौड़ी-कौड़ीके लिये जो लोग रात-दिन मरा करते हैं वे अनायास मिलनेवाले इस परम सुखके पीछे क्यों नहीं पड़ते? उससे किनारा काटकर संसार दुःखसागर है, भवनदी दुस्तर है, मायामोह दुर्घट है, विषय-वासना बड़ी कठिन है, इत्यादि रोना नित्य रोते हुए भी ये लोग संसारमें ही क्यों अटके रहते हैं? अपना सहजसिद्ध अमरपद छोड़कर ये जन्म-मृत्युके नामको क्यों रोया करते हैं? उन्हें मोक्ष दुर्लभ और परमार्थ दुर्गम क्यों जान पड़ता है? जप-तप-ध्यानादि नानाविध साधनोंके कष्ट क्यों उठाते हैं? निजका स्वानन्द-साम्राज्य छोड़ विषयकी नकली चमकवाले काँचके टुकड़े बटोरनेवाले कंगाल बने क्यों फिरते हैं?

सत्पुरुषोंको यही तो बड़ा अचरज लगता है! जीव जो ऐसी उलटी बोली

बोलते हैं, उसे सुनकर उन्हें बड़ी हँसी आती है। मृत्युलोककी यह उलटी रहन-सहन देखकर वे विस्मित होते हैं। वे यह कहते हैं, 'यह भाषा छोड़ दो' इसे उलटकर बोलो, उलटकर देखो। इस समझको छोड़ो कि मैं जीव हूँ, सांसारिक हूँ, दु:खी हूँ, और यह कहो कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं मुक्त हूँ, मैं सुखी हूँ, तो तुम सचमुच ही ब्रह्म, मुक्त और सुखी हो। चाभीको दाहिने घुमा रहे हो सो बायें घुमाओ तो ताला खुल जायगा। जिधर जा रहे हो उधर पीठ फेर दो, आगे न देख पीछे देखो, बाहरकी ओर आँख लगाये हो सो अंदरकी ओर लगाओ, प्रवाह छोड़ उद्गमकी ओर मुड़ो तो सचमुच ही तुम मुक्त हो, सुखी हो, ब्रह्मस्वरूप हो। इसमें कठिनाई ही क्या है? यही तो परमार्थ है। जीव अपने संकल्पसे ही बँधा है, संकल्पसे ही मुक्त है। मैं बद्ध जीव हूँ, यही रोना रो रहे हो, इसीसे जन्म-मरण, पाप-पुण्य, विधि-निषेध और बन्ध-मोक्षके चक्करमें पड़े हो; पर पैरोंको छुड़ाकर नलिका-यन्त्रसे उड़ जानेवाले तोतेकी तरह यह जीव यदि अहं और मम दोनों संकल्प छोड़ दे तो यह उसी क्षण ब्रह्म ही है। कौन किसको बाँधता है, कौन किसको छुड़ाता है? यह सब संकल्पकी माया है। मन जैसा संकल्प करता है, वैसा ही चित्र उसपर खिंच जाता है। संकल्प, कल्पना, संसार, वासना, वृत्ति, मन, माया—ये सातों एक रूप हैं। जिस संकल्पसे जीव बँधा है, उसके छूटते ही जीव मुक्त है। अहं और ममकी दो रस्सियोंसे यह बँधा है, इन रस्सियोंको काटते ही जीव स्वभावत: ही मुक्त है। संकल्पके खादके जलते ही जीवका कालापन कट जाता है और वही उज्ज्वल सोना होता है। कल्पनाका ही बन्धन होता है और कल्पनाका ही मोक्ष होता है और जीव जहाँ-का-तहाँ बन्धमोक्षरहित निर्विकल्प निरञ्जन आनन्दस्वरूप सदासे है ही; परन्तु—

अश्रद्दधाना: पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(गीता ९। ३)

जीवकी ऐसी श्रद्धा हो तो तत्क्षण ही मुक्त है पर जीवकी ऐसी श्रद्धा सहसा नहीं होती, इसीलिये परमार्थके लिये उसे इतना प्रपञ्च करना पड़ता है, अनेक साधन करने पड़ते हैं, अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

२-चिरञ्जीव पद

यह सारा वेदान्त तुकारामजीने सैकड़ों बार पढ़ा, सुना और कहा भी था। वह अपने निश्चित साधन-मार्गपर चले जा रहे थे। पण्ढरीकी वारी, एकादशी-व्रत, कथा-कीर्तन-श्रवण, सद्ग्रन्थ-पाठ इत्यादि वह नियमपूर्वक करते थे। गुरुका प्रसाद उन्हें मिल चुका था। नामदेवरायने स्वप्नमें उन्हें दर्शन दिये और कवित्वकी स्फूर्ति प्रदान की, तबसे कीर्तन करते हुए तथा अन्य अवसरोंपर भी उनके मुखसे अभंग धाराप्रवाह निकलते ही जाते थे। श्रोता गद्गद होकर उन्हें धन्यवाद देते थे। चारों दिशाओंमें उनकी कीर्ति फैल रही थी। बहुत लोग उन्हें संत कहकर पूजने लगे थे, उनके चरणोंमें मस्तक रखकर कोई उनके वक्तृत्वकी, कोई कवित्वकी और कोई उनके साधुत्वकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। इस प्रकार उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती ही जा रही थी, उस समय उनकी २७-२८ वर्षकी आयु रही होगी। इस वयस्में इतनी लोकमान्यता विरलेको ही नसीब होती है। परन्तु अधकचरे पारमार्थिक इतनेसे ही सन्तुष्ट होकर गुरु बन जाते और शिष्य बनानेकी दूकान खोल देते हैं, गुरुपनेके आडम्बरपर चढ़ते हैं और अन्तमें बुरी तरहसे नीचे गिरते हैं। ऐसे उदाहरण हमारे-आपके सामने भी बहुत हैं। चार-पाँच वर्ष साधन किया, स्वप्नमें दो-चार दृष्टान्त मिल गये, साक्षात्कारकी झलक-सी मिल गयी, बस हो गये कृतकृत्य! सीधे-सादे, भोले-भाले, आस-पास जमा होने लगे, स्तुति-स्तोत्र गाने लगे। बस, गुरुजी जम गये और ऋद्धि-सिद्धिका जरा-सा चमत्कार देखकर उसीमें अटक गये, जिस रास्तेसे ऊपर चढ़े थे वह रास्ता भी भूल गये, होते-होते जितना ऊपर चढ़े थे उससे दूना नीचे जा गिरे। ऐसी विडम्बनाएँ अनेक हुआ करती हैं। जिसका परमार्थ-साधन दम्भसे ही आरम्भ होता है उनकी बात छोड़ दीजिये, पर जो शुद्ध अन्तःकरणसे परमार्थ साधनेकी चेष्टा करते हैं उनमेंसे भी कितने ही इसी तरह घहराकर नीचे जा गिरते हैं। ऐसे लोगोंके लिये एकनाथ महाराजने 'चिरञ्जीव पद' के नामसे ४२ ओवियोंका एक फड़कता हुआ प्रकरण लिखा है। साधकोंके सावधान रहनेके लिये वह बड़ा ही उपकारक है। इसमें एकनाथ महाराजने यह बतलाया है कि विषय केवल सांसारिकोंका ही नाश नहीं करते, प्रत्युत साधकको भी अनेक प्रकारसे धोखा देते हैं। साधकके लिये सबसे पहले यह आवश्यक है कि उसे

फँसते ही हैं और ऐसे लोगोंकी संख्या सदा-सर्वत्र ही बहुत काफी होती है। तुकोबाराय-जैसे सच्चे आदर्श विरक्त अत्यन्त दुर्लभ होते हैं और उन्हींको कृष्ण-मिलनका आनन्द और चिरञ्जीव पद प्राप्त होता है। तुकारामका वैराग्य अत्यन्त ज्वलन्त था, आत्मसंशोधन-सम्बन्धी उनकी सावधानता अखण्ड थी, अन्तरङ्गमें कौन-कौन चोर घुस बैठे हैं उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर पकड़ना और कान पकड़-पकड़कर निकाल बाहर करनेके काममें उनकी तत्परता असामान्य थी। आत्म-परीक्षणका ऐसा अभ्यास ही वह चीज है जिससे चित्तशुद्धि होती है, मलिन संस्कार धुल जाते हैं और नये जमने नहीं पाते। साधकको हाथ धोकर इसके पीछे पड़ना पड़ता है। अब हमें यह देखना है कि तुकारामजीने यह अभ्यास कैसे किया? ग्रन्थाध्ययन हुआ, गुरूपदेश हुआ, तथापि आत्मशोधनका कार्य अपने-आप ही करना पड़ता है। इसके लिये सदा चौकन्ना रहना पड़ता है। मन सरपट भागनेवाला घोड़ा है। वैराग्यके लगामसे उसकी चाल काबूमें करके उसे वशमें करना होगा। मनोनिग्रहके बिना सब साधन व्यर्थ होते हैं। मनोजय न होनेसे बड़े-बड़े उग्र तप भङ्ग हो गये हैं, बड़े-बड़े वीर चारों कोने चित गिरे हैं और बड़े-बड़े पण्डित ज्ञानके शिखरसे गिरकर रसातल पहुँचे हैं। मन बड़ा बली है, दुर्जय है, दुर्धर है। तुकारामजी कहते हैं कि 'बड़े-बड़े बुद्धिमानोंको इसने चौपट किया है।' इसलिये विषयोंकी ओर सतत दौड़नेवाले इस मनोव्याघ्रपर आसन जमाकर जो इसे पीछे खींचेगा वही पुरुष सबसे बड़ा करामाती है। 'बात कुछ भी नहीं है पर मन अपने हाथमें नहीं है' यही तो सबका रोना है, इसलिये—

मागें परतवी तो बळी। शूर एक भूमंडळीं॥

'इसे जो पीछे फिरा लेगा वही बली है, वही एक इस भूमण्डलमें सूरमा है।'

अस्तु, तुकारामजीने मनसे कैसे-कैसे युद्ध किया, भगवान्‌की कृपा और सहायतासे उसे राहपर ले जानेके लिये क्या-क्या उपाय किये, आशा, ममता, तृष्णा, प्रतिष्ठा, गर्व, लोभ इत्यादि वृत्तियोंको सावधानतासे कैसे जीता और इस प्रकार चित्तशुद्धिका मार्ग धैर्य और निग्रहसे कैसे तय किया यही अब देखना है।

३-सिद्धको साधनसे क्या काम?

लोकप्रियताका रहस्य

भावुकोंके चित्तमें यह शङ्का उठ सकती है कि तुकारामजी तो सिद्ध पुरुष थे, उनका तो संसार-कल्याणके लिये वैकुण्ठधामसे अवतार हुआ था, उन्हें चित्तशुद्धिके साधनोंकी क्या आवश्यकता पड़ी? तुकारामजी जब स्वयं ही यह बतला रहे हैं कि संसारको वेदनीतिका मार्ग दिखाने, भगवद्भक्तिका डंका बजाने और संतोंका मार्ग परिष्कृत करनेके लिये हम वैकुण्ठधामसे भगवान्‌का सन्देशा लेकर आये हैं तब सामान्य जनोंके समान उन्होंने चित्तशुद्धिके उपाय ढूँढ़े और उन उपायोंद्वारा साधना करके वे लोक-कल्याण-कार्य करनेमें समर्थ हुए इत्यादि बातोंमें क्या रखा है? संसारका उद्धार करनेके लिये जिनका आगमन हुआ उनका चित्त अशुद्ध ही कब था जो उन्हें उसे शुद्ध करनेकी आवश्यकता पड़ी ? वह तो मूलतः ही मनके स्वामी थे, उन्हें मनोजय करने या मलिन वृत्तिको शुद्ध करनेके लिये कुछ साधना करनी पड़ी, यह कहना ही विपरीत जान पड़ता है। इस प्रकरणको पढ़ते हुए भावुक पाठकोंके चित्तमें ऐसी शङ्का उठ सकती है, इसलिये उसका समाधान पहले ही करना उचित है। भगवान् और भगवदवतारस्वरूप महात्माओंके जो चरित्र हैं वे उनकी मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होकर की हुई लीलाएँ हैं। उनके चरित्रभरमें ज्ञाताओंको विभूतिमत्त्व स्पष्ट ही दिखायी देता है। विभूतिमत्त्वके बिना उनके चरित्र इतने पावन, उज्ज्वल और लोक-कल्याणकारक हो ही नहीं सकते थे। विभूतिमत्त्वके बिना ऐसी निर्विघ्न कार्यसिद्धि, इतनी तेजस्विता, इतना यश उन्हें प्राप्त हो ही नहीं सकता था। मनने जो चाहा, कर दिखाया, यह सामान्य बात नहीं है। यह सब सच है, तथापि विभूतियोंको भी मनुष्यदेह धारण करनेपर मनुष्योचित लोकव्यवहार करना ही पड़ता है। ऐसा यदि न हो तो सामान्य जीवोंको उनके चरित्रसे कोई लाभ न होता—कोई बोध ग्रहण करनेका अवसर ही न मिलता। महात्माओंके चरित्रोंके दो अङ्ग होते हैं—एक दैवी और दूसरा मानवी। दैवी अङ्ग देखकर हमलोग साश्चर्य कौतुक अनुभव करते हैं और उससे उनका विभूतिमत्त्व पहचानते हैं; और मानवी चरित्र हमारे अनुकरण करनेके लिये उदाहरणस्वरूप होता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने विश्वरूप दिखाकर अपने ईश्वरत्वकी प्रतीति करा दी है और—

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

—यह बतलाकर वर्णाश्रमादि धर्मसे लोक-संग्रहार्थ नियम भी बाँध दिये। भैंसेसे वेद कहलवाना, भीतको चलाना इत्यादि चमत्कारोंके द्वारा ज्ञानेश्वर महाराजने अपना ऐश्वर्य दिखा दिया और पैठणके ब्राह्मणोंसे शुद्धिपत्र प्राप्त करनेके उद्योगके द्वारा मनुष्योचित व्यवहारका दृष्टान्त भी सामने रखा। तुकोबारायने इहलोकसे चलते-चलाते अन्तमें सदेह वैकुण्ठगमन करके अपना विभूतिमत्त्व संसारको दिखा दिया और जीवनभर साधककी अवस्थामें रहकर संसारको भगवद्भक्तिका सीधा मार्ग भी बतला दिया। 'भूत-दया ही संतोंकी पूँजी है' इस अपनी कहानीको उन्होंने अपनी रहनीसे ही चरितार्थ कर दिखाया है। इस बातको तुकोबारायके चित्तशुद्धिके उपायोंका विवरण पढ़ते हुए ही नहीं, उनके सम्पूर्ण चरित्रको अवलोकन करते हुए पाठक ध्यानमें रखें। तुकोबाराय जितना अपना हृदय खोलकर बोले हैं उतना और कोई नहीं बोला है। सबको एक ही जगह जाना होता है। कोई कूदता-फाँदता जाता है, कोई धीरे-धीरे चलता है। शेर एक ही छलाँगमें बारह हाथ पार करता है। कोई पिपीलिका-मार्गसे जाते हैं, कोई विहङ्गम-मार्गसे जाते हैं। कोई गणितज्ञ चार ही कड़ियोंमें हिसाब लगाकर सवालका जवाब निकाल लेता है, किसीको बारह कड़ियाँ हिसाब लगाना पड़ता है। पहलेकी बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की जाती है, पर हिसाब फैलाकर सम्पूर्ण कर्म दिखानेकी रीति सभी विद्यार्थियोंकी समझमें आती है। चार ही कड़ीमें सवालका जवाब ले आनेकी रीति जानते हुए भी जो शिक्षक बीचकी कोई कड़ी न छोड़कर सम्पूर्ण क्रम समझाकर दिखा देता है वह अत्यन्त लोकप्रिय होता है, उसकी बतायी रीति सबकी समझमें आती है, उसीके बताये मार्गसे सब चलते हैं, और जो कोई उसके पाँव-पर-पाँव रखकर चलता है वह भी गन्तव्य स्थानको पहुँचता है। तुकारामजीका यही मार्ग था और ऐसे मार्गदर्शक होनेके कारण ही वह अत्यन्त लोकप्रिय हुए।

संसारतापें तापलों मी देवा।

'हे भगवन्! संसारके तापसे मैं दग्ध हो चुका।' यहाँसे लेकर—

तुका झाला पांडुरंग!

'तुका पाण्डुरङ्ग हो गया'—तक बीचमें जो-जो पड़ाव हैं उन सबको तुकोबारायने अपने अभंगोंमें स्पष्ट दिखाया है।

पतित भी पापी शरण आलों तुज।

'मैं पतित पापी तेरी शरणमें आया हूँ।' यहाँ पहला पत्थर गड़ा, और—

बीज भाजुनी केली लाही।
आम्हां जन्ममरण नाहीं॥

'बीज भूँजकर लाई बना डाला। अब हमें जन्म-मरण नहीं रहा'—यहाँ आकर यात्रा समाप्त हुई, आखिरी पत्थर गड़ा। इसके बीचमें मील-मीलपर पत्थर गाड़कर उन्होंने भक्तिमार्गके इस रास्तेमें ऐसी सुविधा कर दी है कि तुकारामजीकी अभंगवाणी हृदयमें धारणकर कोई भी इस पन्थका पथिक मील-मीलपर गड़े हुए पत्थरोंको देखते हुए चलता चले। आजतक बहुतोंने बहुत रास्ते बनाये होंगे; पर छोटे-बड़े, सुजान-अजान, ब्राह्मण-चाण्डाल, सबल-दुर्बल, पुण्यवान्-पापी सबके लिये निधड़क जानेयोग्य ऐसा सुगम, प्रशस्त और आनन्द देनेवाला रास्ता जैसा तुकारामजीने बना दिया वैसा और किसीने कहीं न बनाया। भूमि तो वेदोनारायणकी ही है, पर तुकारामजीने कुछ पुराने और कुछ नये स्वयं फोड़कर तैयार किये हुए पत्थर देकर यह राजमार्ग—राजमार्ग नहीं, संतमार्ग—तैयार किया है। इस मार्गपर जिसे जो अभीष्ट हो वह मिलता है। मार्ग भी परिचित जान पड़ता है। तुकारामजीकी सोहबतसे मनका उत्साह बढ़ता है। मार्ग लंबा होनेपर भी सुगम जान पड़ता है। यहाँ अपने मनका सङ्कल्प पूरा होता है, जो चाहिये वही मिलता है, अनायास ही रास्ता तय हो जाता है। रास्तेमें सुरम्य उपवन हैं, चाहे जितना रमिये और त्रिविध तापसे मुक्त होइये। स्थान-स्थानमें अभंग-दर्पण लगे हुए हैं, उनमें निश्चिन्त होकर अपना रूप निहारिये और उसकी मैल निकालकर उसे स्वच्छ कीजिये। चलता रास्ता होनेसे संग-साथकी कमी नहीं। निर्भय और सुरम्य मार्ग है। तुकारामजीने जी-जान लड़ाकर, बड़े कष्ट उठाकर यह दिव्य मार्ग निर्माण किया है। उनके साथ हमलोग यहाँतक चले आये हैं, आगे भी उन्हींका संग पकड़े चलते चलें। उन्होंने कैसे-कैसे कष्ट सहे इसकी कथा उन्हींके मुखसे सुनें। वह स्वयं अनेक कष्टोंको पार कर गये हैं पर इस मार्गपर उनकी दृष्टि है। चोर-डाकू इस मार्गपर बहुत कम आते हैं। चलिये तो अब तुकारामजीने कैसे मनोजय किया, लोक-लाज कैसे छोड़ी, जन-सम्बन्ध तोड़कर वह एकान्तवासमें कैसे रमे, घरमें घुसे हुए अहङ्कारादि चोरोंको उन्होंने

कैसे खदेड़ा, भगवान्‌से कैसे सहायता माँगी और पायी, एकान्तवास और सत्संगमें कितने प्रेमके साथ उन्होंने नाम-सङ्कीर्तन किया जो सब साधनोंका सार है, यह सब उनके चरित्रका मनोरम भाग उन्हींके मुखसे निश्चिन्त होकर श्रवण करें और उन्हींकी कृपासे हमलोग भी उनके पीछे-पीछे चलें।

४-मनोजयका उपाय

तुकारामजीने अपने मनको कितना मनाया है! मनोजयके बिना परमार्थ मिथ्या है। संसारका साम्राज्य मिल सकता है, पर मनोजय करना बड़ा ही कठिन है। इसलिये सार्वभौम राज्य प्राप्त करनेवाले चक्रवर्ती राजाकी अपेक्षा मनको अपने वशमें रखनेवाले साधुकी योग्यता सभी देशोंमें बहुत बड़ी मानी जाती है। यूरोपमें ईसा और सुकरातकी जो प्रतिष्ठा हुई वह किसी राजाकी कभी न हुई। हमारे इस पुण्य-भारतवर्ष देशमें भी 'असंख्य जीव पैदा हुए, पैदा होकर मर मिटे; राव भी हुए, रंक भी हुए और सब आये और चले गये। पर शुक्राचार्य भीष्म, हरिश्चन्द्र, हनूमान्, भरत, शङ्कराचार्य, तुलसीदास, मीराबाई, रामदास, एकनाथ, तुकाराम, ज्ञानदेव, छत्रपति शिवाजी, अहल्याबाई इत्यादि मनोजयी पुरुषोंका जो मान है वह दूसरोंका नहीं है। इसका कारण यही है कि मनपर जीन कसकर अन्तः-शत्रुओंको पछाड़नेवाले वीरकी योग्यता घोड़ेपर सवार होकर युद्धमें शत्रु-संहार करनेवाले योद्धाकी अपेक्षा कहीं अधिक है। प्रह्लादने अपने पितासे कहा—'पिताजी! पहले अपने चित्तमें बैठे हुए आसुरभावको निकालिये, क्योंकि वही आपका यथार्थ शत्रु है।'**समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः**' मनको समत्वमें रखिये, उच्छृङ्खल और कुमार्गकी ओर सहज ही भागे जानेवाले मनसे प्रबल और कोई शत्रु नहीं है, मनकी समता बनाये रहना ही अनन्तकी पूजा है।' (भागवत ७।८।१०) योगवासिष्ठ और भागवतमें मनोनिग्रहके उत्तम साधन बताये हैं। भागवतके (स्कन्ध ११।२३) भिक्षुगीतको पाठक अवश्य पढ़ें। हमारे सुख-दुःखके कारण दूसरे लोग नहीं, देवता नहीं, गृह-कर्म-काल भी नहीं, प्रत्युत हमारा ही मन है। संसार मनः कल्पित है। त्रिगुणात्मक अनन्त वृत्तियाँ मनसे उठती हैं। दान, धर्म, यम-नियम, कर्म, ज्ञान, व्रत, तप—इन सबका उद्देश्य मनको ही नियत करना है।

परो हि योगो मनसः समाधिः।

अर्थात् मनकी समाधि—समता ही परम योग है। जिसका मन समाहित है—शान्त, स्थिर है उसे दानादि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं और जिसका मन समाहित नहीं है उसके लिये ये साधन अनुपयुक्त हैं। इन्द्र-चन्द्रादि देव मनके अङ्कित हुए पर मन किसीके वशमें नहीं रहता। ऐसे दुर्जय मनपर जो सवार होगा, वह बलवानोंसे भी बलवान् है। मन कालमें नहीं समाता, मनको रोग नहीं होता, मन कृश नहीं होता, मनको पकड़ना चाहें तो उसका ठौर-ठिकाना नहीं मिलता। ऐसे मनको कोई वशमें भी कैसे करे? एकनाथ महाराजने कहा है—

जेविं हिरेनि हिरा चिरिजे।
तेविं मनेंचि मन धरिजे॥

'जैसे हीरेसे हीरा चीरा जाता है वैसे ही मनको मनसे ही धरना होता है।' मनोजयका यह सर्वोत्कृष्ट उपाय है। हीरेसे हीरा चीरा जाता है, वैसे ही मन मनसे ही जीता जाता है। मनको पुचकारकर हरि-गुरु-भजनमें जोतना, उसीमें रमाना, स्वरूपमें लगाये रहना यही एकमात्र मनोजयका उपाय है।

मना सज्जना भक्तिपथेंचि जावें।

'रे सज्जन मन! भक्तिके ही रास्तेपर चला कर' समर्थ रामदास स्वामीका उपदेश है। इस मनोबोधके २०५ श्लोकोंद्वारा उन्होंने मनको मना-मनाकर हरि-भजनका चसका लगाया है। मन चञ्चल और दुर्निग्रह है, यह अर्जुनने जब कहा तब भगवान्ने—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(गीता ६। ३५)

यही मनोजयका उपाय बताया है। इसपर ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

वैराग्याचेनि आधारें। जरी लाविलें अभ्यासाचिये मोहरे
तरी केतुलेनि एकें अवसरे। स्थिरावेल ॥४१९॥
यया मनाचें एक निकें। जे देखिले गोडीचिया ठाया सोके
म्हणोनि अनुभवसुखंचि कबतिकें। दावींत जाइजे ॥४२०॥

'वैराग्यके सहारे यदि इस मनको अभ्यासमें लगाया जाय तो कुछ काल बाद वह अवश्य स्थिर होगा। (४१९) मनकी एक बात बड़ी अच्छी है, जिस चीजका इसे चसका लगता है उसमें वह लग ही जाता है। इसलिये इसे

आत्मानुभवका सुख बराबर देते रहना चाहिये।' (४२०)

एक ओरसे वैराग्यकी धूनी रमाकर चित्तसे विषयोंका त्याग करना और दूसरी ओरसे हरि-चिन्तनका आनन्द लेना, इस प्रकार वैराग्य और अभ्यास दोनों अस्त्र-शस्त्रोंकी मारसे मनोदुर्ग दखल करना होता है। गुरुभक्त गुरुभक्तिका अभ्यास करें, प्रेमी सगुण-भक्तिका अभ्यास करें और ज्ञानी स्वरूपानुसन्धानका अभ्यास करें। सबका तात्पर्य और फल एक ही है। गुरु, सगुण और निर्गुण तीनों तत्त्वतः एक ही हैं। यथारुचि कोई भी अभ्यास दृढ़ हो जांना चाहिये। इस मनमें एक बड़ा भारी गुण यह है कि यह जहाँ लग जाता है वहाँ लग ही जाता है, फिर वहाँसे हटता नहीं। उसे यदि यह प्रपञ्च ही प्यारा है तो उसे बराबर यह समझाते रहना चाहिये कि यह विश्व-रचना दग्धपटवत् है और ऐसा वैराग्य दृढ़ करना चाहिये कि मन विषयोंसे ऊब जाय और दूसरी ओरसे उसे परमार्थका चसका लगाते हुए हरि-भजनमें समाधि देनी चाहिये। मनसे ही मनको मारना, हरि-भजनमें लगाकर उन्मन करना, हरिस्वरूपमें मिलाकर मनको मनकी तरह रहने ही न देना, यही तो मनोजय है। एकनाथ महाराज कहते हैं—

या मनाची एक उत्तम गती। जरी स्वयें लागलं परमार्थीं।
तरी दासी करी चारी मुक्ती। दे बांधोनी हातीं परब्रह्म॥

'इस मनकी एक उत्तम गति है। यदि यह कहीं परमार्थमें लग गया तो चारों मुक्तियोंको दासियाँ बना छोड़ता है और परब्रह्मको बाँधकर हाथमें ला देता है।' ऐसे परब्रह्म हस्तगत हो जाता है। इतना बड़ा लाभ मनके वश करने होता है।

गति अधोगति मनाची हे युक्ति। मन लावी एकांतीं साधुसंगें॥

'मनकी बड़ी अधोगति है, पर इस युक्तिसे उस मनको सत्सङ्गसे एकान्तमें लगाओ।'

५-मनपर विजय

मनोजयका यह रहस्य और यह महत्त्व ध्यानमें रखकर अब यह देखें कि तुकारामजीने मनको कैसे जीता।

मन करा रे प्रसन्न। सर्वसिद्धींचें साधन॥
मोक्ष अथवा बंधन। सुख समाधान इच्छा ते॥

'अरे! मनको प्रसन्न करो जो सब सिद्धियोंका साधन है, जो ही मोक्ष

अथवा बन्धनका कारण है। (उसे प्रसन्न कर) उस सुख-समाधानकी इच्छा करो।'

उत्तम गति अथवा अधोगति देनेवाला मन है। मन ही सबकी माता है। साधक, पाठक, पण्डित, श्रोता, वक्ता सबसे तुकाराम हाथ उठाकर यह कह रहे हैं कि 'मनको छोड़ और कोई देवता नहीं, पहले इसे प्रसन्न कर लो।' मनको प्रसन्न करना उसे विषय-प्रवाहसे खींचकर हरिभजनके लङ्गरमें बाँधना है, मनकी बड़ी रखवाली करनी पड़ती है, यह जहाँ-तहाँ जाय वहाँ-वहाँसे इसे बड़ी सावधानीके साथ खींच लेना पड़ता है।

तुका म्हणे मना पाहिजे अंकुश। नित्य नवा दीस जागृतीचा॥

'तुका कहता है कि मनपर अङ्कुश चाहिये, जिसमें जागृतिका नित्य नवीन दिवस उदय हो।'

नित्य जागकर इस मनको सँभालना पड़ता है, मदोन्मत्त हाथी जैसे अंकुशके बिना नहीं सँभलता, वैसे ही यह चञ्चल मन अखण्ड सावधान रहे बिना ठिकाने नहीं रहता। तुकारामजीने मनको कभी देव कहा, कभी चञ्चल कहा, कभी दुर्जन कहा पर हर बार भगवान्‌को यादकर उसे सँभालनेका भार उन्हींपर रखा। मनुष्य अपनी बुद्धिसे इस चञ्चल मनको कहाँतक रोक सकता है? कितना सावधान रह सकता है? एक क्षणमें पचासों जगह चक्कर लगा आनेवाले इस मंनको भगवान् दया करें तो ही रोक सकते हैं।

आवरितां मन नावरे दुर्जन। घात करी मन माझें मज॥
अंतरीं संसार भक्ति बाह्यात्कार। म्हणोनि अंतर तुझ्यापायीं॥

'मनको रोकना चाहें तो यह दुर्जन नहीं रुकता। मेरा मन मुझे ही हानि पहुँचाता है। इसके अन्तरमें संसार भरा हुआ है, भक्ति केवल बाहर है। इसलिये यह अन्तर आपके चरणोंमें रखता हूँ।'

यह मन संसारकी बातें ही सोचता रहता है। हे भगवन्! मेरे-तेरे बीच यही एक बड़ी भारी बाधा है। मैं तो भजन-पूजन करता हूँ पर अंदर मन संसारका ही ध्यान करता रहता है, वह ध्यान नहीं छूटता; यह तो मुझे भक्तिका ढोंग ही लगता है। हे नारायण! आओ, दौड़ आओ, तुम्हीं इस अन्तरमें आकर भरे रहो।

काम क्रोध आड पडले पर्वत । राहिला अनंत पैलीकडे ॥ १ ॥
नुल्लंघवे मज न सांपडे वाट । दुस्तर हा घाट बैरियांचा ॥ २ ॥

'काम-क्रोधके पर्वत आड़े आ पड़े हैं और भगवान् अनन्त परली तरफ रह गये। मैं इन पहाड़ोंको नहीं लाँघ सकता, और कोई रास्ता नहीं मिलता। वैरियोंका यह घाट तो बड़ा ही दुस्तर है।'

इस मनके कारण, हे भगवन्! मैं बहुत ही दु:खी हूँ। क्या मनके इन विकारोंको तुम भी नहीं रोक सकते।

आवरितां तुझे तुज नावरती । थोर वाटे चित्तीं आश्चर्य हें ॥ ३ ॥
तुका म्हणे माझ्या कपाळाचा गुण । तुला हांसे कोण समर्थासी ॥ ४ ॥

'तेरे (ये विकार) तेरे रोके भी नहीं रुकते, यह तो चित्तको बड़ा अचरज लगता है, तुका कहता है, यह मेरे ललाटकी कर्म-रेखा है, तुझे कोई क्या हँसेगा?'

मनकी अनन्त ऊर्मियोंको देखकर कभी-कभी तुकारामजी अत्यन्त निराश हो जाते थे '**तुका म्हणें माझा न चले सायास**' (अब मेरा बस नहीं चलता।) यह भगवान्से दिल खोलकर कह देते थे।

आतां कैंचा मज सखा नारायण। गेला अंतरोन पांडुरंग।।

'अब नारायण मेरे सखा कहाँ रहे? वह तो मुझे छोड़कर चले गये!'

भगवन्! मैं तो दु:खी हुआ हूँ, पर आप दु:खी मत होइये।

'मेरा मन ऐसा चञ्चल है कि एक घड़ी, एक पल भी स्थिर नहीं रहता। अब हे नारायण! तुम्हीं मेरी सुध लो, मुझ दीनके पास दौड़े आओ।'

इस मनको जितना ही बंद रखो उतना वह बेकाबू हो जाता है—

'इसे बहुत रोको, बंद कर रखो तो यह खीज उठता है, फिर चाहे जिधर भागता है; इसे भजन प्रिय नहीं, श्रवण प्रिय नहीं, विषय देखकर उसी ओर भागता है।'

सोते-जागते इसे कब-कहाँतक रोका जाय ?
मज राखे आतां। तुका म्हणे पंढरिनाथ ॥ ७ ॥

'हे पण्ढरीनाथ! अब तुम्हीं मेरी रक्षा करो।'

नित्य इस मनका विचार करता हूँ जो देखता यह हूँ कि 'यह तो बेबस विषय-लोभी है।' अपने बलसे इसे रोक रखना चाहता हूँ पर 'इस उलझनको सुलझानेका कोई उपाय न देख निराश होता हूँ।' '**अनंत उठती चित्ताचे तरंग**'

(अनंत उठतीं चित्तकी तरंगें) यह हे भगवन्! क्या आप नहीं जानते?

कोण तुम्हांवीण माना चालक। दुजें सांगा एक नारायणा॥

'आपके बिना इस मनका दूसरा कौन चालक है, हे नारायण! यह तो बताइये।'

आपके सिवा और कोई यदि मनका चालक हो तो कृपाकर उसका पता-ठिकाना बता दीजिये तो आपको क्यों कष्ट दें, उसीको जाकर पकड़ें?

'मनका निरोध करता हूँ पर विकार नष्ट नहीं होता। ये विषयद्वार बड़े ही दुस्तर हैं। यदि आप अन्तरमें भरे रहते तो मैं निर्विषय होकर तदाकार हो जाता।'

मनका निरोध करनेका बड़ा यत्न किया पर मनके दुष्ट विकार नष्ट नहीं होते। विषयोंके द्वाररूप ये इन्द्रियाँ बड़ी कठिन हैं, ये सदा ही बाहरसे विषयोंको अंदर ले आया करती हैं। मन और इन्द्रियोंका सख्य बड़ा पुराना होनेसे ज्यो ही ये इन्द्रियाँ विषयोंको लेआती हैं त्यों ही यह मन श्रवण-मननादि साधनोंके जमा किये हुए विचार क्षणार्धमें भुलाकर विषयाकार बन जाता है। अतएव हे नारायण! आप ही अन्त:करणको व्यापे रहें तो ही निस्तार है। अन्तरमें आपको आसन जमाये देखकर ये विषय बाहर-के-बाहर ही रहेंगे। हे भगवन्! हे करुणाकर नारायण! अब वेगसे आओ। मेरे अन्तरमें भरकर आप ही यहाँ सदा विराजें। आप कहेंगे कि 'तुम इन इन्द्रियोंको सँभालो, हम मनको देख लेंगे।' देखिये, भगवन्! ऐसा न कहिये।

'एकका भी दमन मुझसे नहीं होता, सबका नियमन कैसे करूँ?'

इन्द्रियोंका दमन करते बनता नहीं, मन वशमें आता नहीं! सारा अन्धकार-ही-अन्धकार है!

तुका म्हणे झाली अंधलयाची परी। आतां मज हरी बाट दावी॥

'तुका कहता है कि अन्धेकी-सी हालत मेरी हो गयी है, हे हरे! अब मुझे (हाथ पकड़कर) रास्ता बताओ।'

* * *

बीचमें कभी वह मनको मीठे शब्दोंद्वारा मनाते भी थे, कहते, रे मन! तू अब पण्ढरीकी लौ लगा, फिर तू जो कहेगा, मैं मानूँगा।

मना एक करीं । म्हणे मी जाईन पंढरी ।
उभा विटेवरी । तो पाहे न सांबळा ॥ १ ॥

'रे मन ! एक काम कर—यह कह दे कि मैं पण्ढरी जाऊँगा और वहाँ ईंटपर खड़े श्यामको देखूँगा।'

रे मन ! यह कह कि मैं '**राम-कृष्ण-हरी**' कहूँगा, उल्लासके साथ हरि-कथा सुनूँगा, संतोंके पैर पकड़ूँगा। तू इतना जरूर कर कि—

'मैं रंगशिलापर (हरि-प्रेमसे) नाचूँगा तब तू भी अंदरकी मैल छोड़कर तैयार रह और तालपर ताली बजाता चल।'

रे मन ! इन इन्द्रियोंके पीछे भटकते-भटकते अब तू थक गया होगा। तुझे अखण्ड विश्रान्तिका स्थान दिखाता हूँ, हम-तुम वहाँ चलकर अखण्ड सुख-सम्भोग करें।

'रे मन ! अब भगवान्‌के चरणोंमें लीन हो जा, इन्द्रियोंके पीछे मत दौड़। वहाँ सब सुख एक साथ हैं और वे कभी कल्पान्तमें भी नष्ट होनेवाले नहीं। जाना-आना, दौड़ना-भटकना, चक्करमें पड़ना—यह सब वहाँ छूट जाता है, वहाँ पर्वतोंपर चढ़नेका कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। अब मुझे तुझसे इतना ही कहना है कि तू कनक और कान्ताको विषतुल्य मान। तुका कहता है, उपकार करना तेरे हाथमें है, तू चाहे तो हम-तुम भव-सिन्धुके पार उतर सकते हैं।'

* * *

मनको इस तरह समझाकर तुकाराम फिर उसकी फरियाद भगवान्‌के पास ले जाते, भगवान्‌पर ही सारा भार छोड़ते, शरणागत हो जाते, प्रेमवश भगवान्‌पर क्रोध भी करते, कहते—

तुम्ही देवा माझा करा अंगीकार ।

'भगवन् ! आप मुझे अङ्गीकार कीजिये।' ऐसा अब मैं नहीं कहूँगा। जो होना था, वह तो हो चुका। आपकी और मेरी भी पत तो जाती रही—

आतां दोहीं पक्षीं लागलें लांछन । देवभक्तपण लाजवीलें ॥

'अब तो दोनोंको लाञ्छन लग ही गया। आपका देवपना और मेरा भक्तपना दोनों ही लाञ्छित हुए।'

आपके लिये सब ठीक ही है, क्योंकि आप विश्वनाथ हैं, बड़े हैं। लोग

यह कैसे कहें कि आपकी पत जाती रही! पर मेरी हालत जो हुई—आखिर क्या हुई? बताऊँ? सुनो—

'एकान्तमें अकेला यह मन एक पल भी एक स्थानमें स्थिर नहीं रहता। पैरोंमें महत्त्वकी बेड़ियाँ पड़ गयीं, गलेमें स्नेहकी फाँसी लगी। देहको तो ऐसी आदत पड़ गयी है कि जो सुख देखा वही उसे चाहिये और मुँह ऐसा हो गया है कि कदन्न उसे स्वीकार नहीं। तुका कहता है कि 'मैं अवगुणोंकी खानि बना हूँ, निद्रा और आलस्यका तो पूछना ही क्या है।'

मैं आखिर किस काम आया? लोग मुझे साधु मानने लगे, महात्मा कहने लगे, यह महत्त्व मुझे क्या मिला, मेरे पैरोंमें बेड़ियाँ पड़ गयीं! कारण, हालत तो मेरी यह है कि स्त्री-पुत्र, घर-द्वारके ममत्व-स्नेहकी फाँसी मेरे गलेमें लगी हुई है। यह मनका हाल हुआ और तनका यह हाल है कि जो सुख सामने आता है वही यह माँग बैठता है। जीभ भी ऐसी चटोरी हो गयी है कि यह कदन्न खा ही नहीं सकती, इसे उत्तम मिष्टान्न और षड्रस भोजन चाहिये। निद्रा और आलस्य दिन-दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। इस प्रकार सब दोषोंका घर बन बैठा हूँ। थोड़ी देर एकान्तमें बैठकर स्थिर होकर तेरा ध्यान करना चाहूँ तो यह मन एक पल भी स्थिर नहीं रहता। भगवन्! बताओ, मेरा भक्तपना अब कहाँ रहा और आपका भगवान्पना भी कहाँ रहा—दोनोंहीपर तो स्याही पुत गयी!

न संडवे अन्न। मज न सेववे वन॥ १॥
म्हणउनी नारायणा। कींव भाकितों करुणा॥ २॥

'अन्न छोड़ा नहीं जाता, मुझसे वन सेया नहीं जाता। इसलिये हे नारायण! यही कहता हूँ कि करुणा करो।'

मेरे अंदर क्या-क्या दोष हैं, उन सबको मैं जानता हूँ, पर क्या करूँ? मनपर बस नहीं चलता, इन्द्रियोंको खींचते नहीं बनता, वाणीसे कहता तो बहुत-कुछ हूँ, पर कथनी-जैसी करनी नहीं बन पड़ती। ऐसी विषम अवस्थामें जब मन और इन्द्रियाँ एक तरफ हो गयी हैं और दूसरी तरफ मैं हूँ—मेरी उनकी ऐसी तनातनी है तब आप ही मध्यस्थ होकर इस कलहको मिटाइये, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

माझे मज कळों येती अवगुण। काय करूँ मन अनावर॥ १॥
आतां आड उभा राहे नारायणा। दयासिंधुपणा साच करीं॥ ध्रु०॥
वाचा वदे परा करणें कठीण। इंद्रियां आधीन झालों देवा॥ २॥
तुका म्हणे जैसा तैसा तुझा दास। न धरी उदास मायबापा॥ ३॥

'मेरे दुर्गुण मुझे जान पड़ते हैं, पर क्या करूँ! मनपर बस नहीं चलता। अब आप ही हे नारायण! बीचमें आ जाइये और अपने दयासिन्धु होनेको सत्य कर दिखाइये। वाणी तो कहती है, पर करना कठिन है। मैं इन्द्रियोंके इतना अधीन हो गया हूँ। तुका कहता है, मैं जैसा भी हूँ, तुम्हारा दास हूँ! मेरे माँ-बाप! मुझे उदास मत करो।'

मैं जैसा हूँ ऐसा ही तुम मुझे अपना लो और अपने दयासिन्धु होनेको सत्य कर दिखाओ। 'मनको रोको, मनको रोको, कहकर भगवान्‌से कितनी विनती की पर मन नहीं रुकता, नहीं स्वाधीन होता; और दयासिन्धु चुपचाप बैठे हैं, कुछ बोलतेतक नहीं! इस भावनासे खड़बड़ाकर तुकाराम कहते हैं—

काय करूँ आतां या मना न संडी विषयाची वासना।
प्रार्थितांही राहे ना। आदरें पतना नेऊं धाली॥ १॥
आतां धावें धांवे गा श्रीहरी। वायां गेलों नाहीं तरी।
न दिसे कोणी आवरी। आणिक दुजा तयासी॥ ध्रु०॥
न राहे एके ठायीं एक घड़ी। चित्त तडतडां तोडी।
भरले विषय भोवडी। घालूं पाहे उडी भवडोहीं॥ २॥
आशा तृष्णा कल्पना पापिणी। घात मांडला माझायांणीं।
तुका म्हणे चक्रपाणी। काय आजूनी पाहसी॥ ३॥

'क्या करूँ अब इस मनको? यह विषयकी वासना तो नहीं छोड़ता, मनानेसे भी नहीं मानता, ठीक पतनकी ओर लिये जा रहा है। हे श्रीहरि! अब दौड़ो, दौड़ो, नहीं तो मैं अब गया! और कोई नहीं दिखायी देता जो इस मनको रोक रखे। एक घड़ी भी एस स्थानमें नहीं रहता, बन्धन तड़ातड़ तोड़कर भागता है। विषयोंके भँवरभरे भव-सागरमें कूदा चाहता है। आशातृष्णा-कल्पना-पापिनी मेरा नाश करनेपर तुली हुई हैं और तुका कहता है हे चक्रपाणि! तुम अभी देख ही रहे हो।'

पत्थरका भी कलेजा निकल पड़े ऐसे करुणा स्वरसे मनको संयत करनेके लिये तुकाराम नारायणसे इतना गिड़गिड़ाये, पर नारायण चुप! तुकाराम इतने विकल, इतना यत्न करनेवाले, फिर भी भगवान् मौन साधे बैठे हैं! क्यों? क्या इसका यह मतलब है कि भगवान् यह चाहते थे कि तुकाराम ऐसे ही विकल होकर प्रयत्न करते रहें। क्या इसी विकल प्रयत्नमें मनोजयका बीज है? शायद भगवान् बाह्यत: इसीलिये तटस्थ थे। भगवान् यह देख रहे थे कि तुकारामजीकी लगन इतनी जबदस्त है कि उसपर भगवत्कृपा करनी ही होगी, यही निश्चय करके भगवान्, तुकारामजीके मनोजयके उद्योगको कौतुकके साथ देख रहे थे!

तुका म्हणे नाहीं चालत तांतडी।
प्राप्तकाळघडी आल्यावीण॥

'तुका कहता है, अधीरतासे कुछ नहीं होगा जबतक उसका समय न आ जाय।'

अत्यन्त कोमलहृदय भक्त-वत्सल भगवान् पाण्डुरङ्ग इसीलिये मौन साधे तुकारामजीकी ओर अत्यन्त प्रेमसे देख रहे थे, बीच-बीचमें प्रसादकी झलक दिखा देते थे, पर जबतक इष्टकाल उपस्थित नहीं हुआ है तबतक तुकारामको चित्त-शुद्धिके उद्योगमें ऐसे ही लगे रहने दो, इसी विचारसे भगवान् तटस्थ बने हुए थे। चित्त-शुद्धिके पूर्ण होते ही, आस्थाकी भूमिके तपकर तैयार होते ही वह करुणा-घनश्याम बरसे, पर उस मधुर मङ्गलमय प्रसङ्गकी ओर चलनेके पूर्व अभी हमलोग यह देख लें और समझ लें कि तुकाराम अपने चित्तके सब विकारोंको दूर करके चित्तको पूर्ण शुद्ध करनेके कैसे-कैसे उपाय कर रहे थे।

६-धन, स्त्री और मान

परमार्थ-पथमें धन, स्त्री और मान—तीन बड़ी खाइयाँ हैं। पहले तो इस पथपर चलनेवाले पथिक ही बहुत थोड़े होते हैं, फिर जो होते हैं उनमेंसे कुछ तो पहली पैसेकी खाईमें ही खो जाते हैं। इससे जो बचते हैं वे आगे बढ़ते हैं। इनमेंसे कुछको दूसरी खाई (स्त्रीकी) खा जाती है। इससे बचकर जो आगे बढ़े वे तीसरी खाई (मानकी) में खपते हैं! इन तीनों खाइयोंको जो पार कर जाते हैं वे ही भगवत्कृपाके पात्र होते हैं, पर ऐसा पुरुष विरला ही होता है।

विरळा ऐसा कोणी। तुका त्याचे लोटांगणीं।

'ऐसा विरला जो कोई हो, तुका उसके चरणोंमें लोटता है।'

तुकारामजीका मन:संयम बड़ा ही प्रचण्ड था, इससे पहली दो खाइयोंको तो वह अनायास पार कर गये, तीसरी खाईको पार करनेमें उन्हें भी कुछ कठिनाई पड़ी, ऐसा जान पड़ता है। तुकाराम रणधीर महावैष्णव वीर थे, उनका वीरताका बाना ऐसा कसा हुआ था कि कहींसे उसमें कोई ढिलाई नहीं, पहलेसे ही वह कसौटीपर कसा हुआ था इसलिये वह तीनों खाइयोंको पार कर गये। पहले धनकी खाई आती है। पर तुकारामजीने वैराग्यकी प्रथम अवस्थामें ही धनको पत्थरके समान तुच्छ माननेका निश्चय किया, अपना सब बही-खाता इन्द्रायणीके दहमें डुबाकर लेन-देनके झगड़ेसे मुक्त हो गये; छत्रपति श्रीशिवाजी महाराजने उनके पास हीरे-मोती भेजे थे, तुकारामजीने उन्हें देखातक नहीं और लौटा दिया। वैराग्य-लाभके पश्चात् अन्ततक उन्होंने धनको स्पर्शतक नहीं किया; इससे यह जान पड़ता है कि उन्हें धनका मोह कभी हुआ ही नहीं। दूसरा मोह स्त्रियोंका होता है। इस विषयमें भी उनका चरित्र आरम्भसे ही अत्यन्त उज्ज्वल था। अपनी स्त्रीका भी जहाँ स्मरण नहीं वहाँ पर-स्त्रीकी बात ही क्या? उनकी दिनचर्या ही ऐसी थी कि रातको श्रीविट्ठल-मन्दिरमें कीर्तन समाप्त होनेपर घंटे-दो-घंटे वह यदि सो ही गये तो मन्दिरमें या अपने घरमें सो लेते थे, उषाकालमें उठकर स्नान करके श्रीविट्ठल-पूजा करके सूर्योदयके समय इन्द्रायणीके पार हो जाते थे, सो रातको फिर गाँवमें आते और आते ही कीर्तन करने लग जाते। दिनभर भण्डारा-पर्वतपर ग्रन्थाध्ययन और नाम-स्मरणमें रमे रहते थे। इस दिनचर्यामें दिनको भी, स्त्रीसे मिलनेका अवसर नहीं मिलता था। इस कारण जिजाबाईको बड़ा कष्ट था और वह घाटपर या अड़ोस-पड़ोसमें अन्य स्त्रियोंके पास अपना रोना रोती हुई प्राय: दिखायी देती थीं! जिस पुरुषमें ऐसा प्रखर वैराग्य हो उसे स्त्रीका मोह क्या? पर-पुरुषको मोहनेवाली स्त्रियाँ तो उन्हें रीछनी-सी जान पड़ती थीं।

तुका म्हणे तैशा दिसतील नारी। रिसाचिया परी आम्हा पुढें॥

'तुका कहता है, वैसी नारियाँ हमारे सामने आती हैं तो रीछनी-सी लगती है।' रीछनी गुदगुदी करके प्राण हरण करती हैं। वैसे ही परमार्थी पुरुष यह जाने कि स्त्रियोंका सङ्ग नाश करनेवाला है और उनसे दूर रहे। यही तुकारामजीके

मनका निश्चय था। स्त्रैण पुरुषोंकी दो-चार अभङ्गोंमें उन्होंने खूब खबर ली है। साधक कैसा होना चाहिये, यह बतलाते हुए वह कहते हैं—

एकांती लोकांतीं स्त्रियांसी भाषण। प्राण गेला जाण करूँ नये॥

'एकान्तमें या लोकान्तमें (भीड़-भड़क्केमें) भी स्त्रियोंसे भाषण, प्राण जाय तो भी, न करे।'

साधकमें इतनी दृढ़ता होनी चाहिये, तभी तो उसका वैराग्य टिक सकता है। इस दृढ़ताके न होनेसे नये-पुराने सैकड़ों गुरु, बाबाजी, महाराज, परम्पराभिमानी और सुधारक दयादाक्षिण्य और वनितोद्धारकी बातें करते-करते कहाँ-से-कहाँ जाकर गिरते हैं यह तो हमलोग नित्य ही देखा करते हैं! तुकाराम या समर्थ रामदास-जैसे वैराग्यशिखामणि सत्पुरुषोंका ही यह काम है कि स्त्री-जातिकी उन्नतिका उपाय करें, यह अधकचरोंका काम नहीं है। जिन्होंने अपना उद्धार नहीं किया या नहीं जाना वे दूसरोंका उद्धार क्या करेंगे? उद्धार और उन्नतिके नामपर केवल अपनी अधोगति कर लेंगे। इसलिये इन बातोंमें साधकोंको साधन-अवस्थामें अत्यन्त सावधान रहना चाहिये। इसीमें उनका कल्याण है। अस्तु! तुकारामजी वैराग्यके मेरुमणि थे। एक बारकी कथा है कि वह भण्डारा-पर्वतपर हरि-चिन्तनमें निमग्न थे। जब एक स्त्री अपने मनसे हो या किसीके उभारनेसे हो, तुकारामजीकी परीक्षा करने उनके पास एकान्तमें गयी। उस अवसरपर तुकारामजीके मुखसे दो अभङ्ग निकले हैं। एक उस स्त्रीका भाव जाननेपर भगवान्‌से निवेदन किया हैऔर दूसरेमें उस स्त्रीसे उन्होंने अपना निश्चय बताया है। वे दोनों अभङ्ग प्रसिद्ध हैं—

स्त्रियांचा तो संग, न को नारायणा। काष्ठा या पाषाणा मृत्तिकेच्या॥
नाठवे हा देव, न घडे भजन। लांचावलें मन, आवरेना॥ ध्रु०॥
दृष्टिमुखे मरण, इंद्रियांच्या द्वारें। लावण्य तें खरें, दुःखमूळ॥ २॥
तुका म्हणे जरि, अग्नि जाला साधु। तरी पावे बाधूं संघट्टणें॥ ३॥

'हे नारायण! स्त्रियोंका सङ्ग न हो, काठ, पत्थर और मिट्टीकी भी स्त्रीकी मूर्तियाँ सामने न हों। उनकी माय ऐसी है कि भगवान्‌का स्मरण नहीं होता, भगवान्‌का भजन नहीं होता। उनसे परचा हुआ मन बसमें नहीं आता। उनके नेत्रोंके कटाक्ष और मुखके हाव-भाव इन्द्रियोंके रास्ते मरणके कारण होते हैं।

उनका लावण्य केवल दु:खका मूल है। तुका कहता है, अग्नि यदि साधु भी हो जाय तो भी उसका संसर्ग बाधक (जलानेका कारण) ही होता है। इसलिये इनसे बचाओ, इनका सङ्ग जिसमें न हो।'

तुकारामजी फिर उस स्त्रीको सम्बोधन कर कहते हैं—

पराविया नारी, रखुमाईसमान। हें गेलें नेमून, ठायींचेंचि॥ १॥
जाईं वो तूं माते! न करी सायास। आम्हीं विष्णुदास, तैसे नव्हो॥ ध्रु॥
न साहावे मज, तुझें हें पतन। नको हें वचन, दुष्ट वदों॥ २॥
तुका म्हणे तुज, पाहिजे भ्रतार। तरी काय नर, थोडे झालें॥ ३॥

'पर-स्त्री रुक्मिणीमाताके समान है, यह तो पहलेसे ही निश्चित है। इसलिये माँ! तुम जाओ, मेरे लिये कोई चेष्टा न करो। हमलोग विष्णुदास हैं—वह नहीं हैं। तुम्हारा यह पतन मुझसे नहीं सहा जाता, फिर ऐसी बुरी बात मत कहो। तुका तो यही कहता है कि यदि तुम पति चाहती हो तो संसारमें नर क्या कम हैं?'

तुकारामजीने उसे भी रखुमाई कहा, माता कहा, अपना निश्चय बताया और विदा किया। तात्पर्य, परमार्थमें कनक और कान्ताकी जो दो बड़ी भारी बाधाएँ हैं वे तुकारामजीके चित्तमें कभी बिंध नहीं सकीं, इससे इस विषयमें इन्हें मनोनिग्रहका कोई विशेष प्रयत्न करनेका कारण ही नहीं था। जन्मते ही वे शीलवान् और विरक्त थे। पर-धन और पर-दाराकी इच्छा पामरोंके ही चित्तमें उठा करती हैं। तुकारामजीने उनके सम्बन्धमें कहा है कि 'पर-स्त्रीको माता कहते हुए उनका चित्त आप ही अपनेको लज्जित करता है।' जो लोग ऐसी अशुभ वृत्तियोंसे पीड़ित हैं, पर जो विवेक और वैराग्यसे उनका निरोध करते हैं उनकी वीरता भी प्रशंसनीय है। परन्तु जिनके हृदयाकाशमें ऐसी हीनवृतियोंके बादल उठते ही नहीं वे ही सच्चे सदाचारी हैं। जिस सदाचारमें फिसलनेका भय या संशय रहता है वह सच्चा सदाचार ही नहीं है। पापकल्पनाकी हवा भी पुण्यपुरुषोंके चित्तको लगने नहीं पाती। ऐसे पुरुष ही शुचि और पवित्र होते हैं। तुकाराम ऐसे ही पुरुष थे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। जिनकी निष्कलङ्क शुचितासे देहू-सा गाँव पुण्य-क्षेत्र हो गया और इन्द्रायणी पतितपावनी हुई, जिनके दर्शनसे हजारों जीव तर गये, जिनके नाम-संकीर्तनसे प्रसिद्ध पापी पछताकर पुण्यात्मा

हो गये, वह तुकोबाराय विशुद्ध शुभ्र पुण्यराशि थे यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। तात्पर्य, कनक और कान्ता, जिसके चक्करमें सारा संसार पड़ा हुआ है, तुकाराम उनसे सदा ही विमुक्त रहे। उनका वैराग्य अचल था।

मनुष्यमात्र मानकी इच्छा करता है। कौन नहीं चाहता कि लोग हमें अच्छा कहें, लोगोंमें हमारी बात और इज्जत रहे? केवल दो ही ऐसे हैं जिन्हें मानकी परवा नहीं होती, एक वह जो किसी व्यसनमें फँसा, दुराचारमें धँसा रहता है और दूसरा वह जो सत्यासत्यमें मनको साक्षी रखकर नारियलके वृक्षके समान सीधा ही बढ़ा जाता है। ये दोनों ही निःसङ्ग और निर्लज्ज बने रहते हैं! पहला रहता तो है सङ्गमें ही, पर व्यसन-दुराचारसे वह इतना पाषाणहृदय हो जाता है कि उसे लोकनिन्दा या लोक-स्तुतिकी कुछ भी परवा नहीं रहती। दूसरा चित्त-शुद्धिके लिये तथा अपने उद्योगकी सिद्धिके लिये जान-बूझकर जनसमुदायसे अलग ही रहता है और आत्मविश्वास होनेसे निन्दा-स्तुतिकी परवा नहीं करता। दोनों ही प्रकारोंके मनुष्य संसारमें बहुत ही कम हैं, बाकी सब लोग लौकिक मानके ही पीछे लगे हुए हैं। आचार-विचार, लोक-लाज या वैदिक कर्मानुष्ठानमें सबका बस यही ध्यान रहता है कि लोग हमें अच्छा कहें। इसके परे वे और कुछ नहीं देख सकते, नहीं समझ सकते। गृहाचार या लोकाचारका पालन प्रायः इसीलिये किया जाता है कि यदि ऐसा नहीं करेंगे तो लोग बदनाम करेंगे। सबसे हिले-मिले रहना, सबके यहाँ आना-जाना, बात-चीत, दावत-पार्टी, लाइब्रेरी, सभा-सोसायटी, व्याख्यान सर्वत्र नाम और मान लगा हुआ है, कहीं यह न हो ऐसा नहीं है। चन्दा भी लोग नाक-भौं सिकोड़कर दे डालते हैं इसीलिये कि अपनी बात रहे, मेल-माफकत बनी रहे। सामान्य जनोंका यही लौकिक आचार है। जीवनका कोई महान् ध्येय नहीं, कोई बड़ा कर्मानुष्ठान नहीं, समयका कोई मूल्य नहीं, जन्मकी सार्थकताका कुछ ध्यान नहीं, जबतक जीवन है तबतक जी रहे हैं, न उस जीवनका कुछ मतलब है, न उस जीनेका, सिवा इसके कि एक दिन पैदा हुए और एक दिन मर जायँगे! ऐसे ही जीव लौकिक मानके बड़े भोक्ता होते हैं! जो कार्य-कर्ता पुरुष हैं इनका काम ऐसे लौकिक मानके पीछे पड़े रहनेसे नहीं चल सकता। अस्तु, तुकोबाराय सत्यासत्यमें मनको साक्षी रखकर अपने परमार्थ-मार्गपर चलते गये, लोग बात कहते हैं इसका विचार करनेकी उन्होंने

आवश्यकता ही नहीं रखी—लौकिक मानका ही त्याग कर दिया। यह त्याग उन्होंने तीन प्रकारसे किया—(१) लोगोंका ही त्याग किया, (२) एकान्तमें रहने लगे और (३) निन्दा-स्तुतिकी कुछ परवा नहीं की। यह सब उन्होंने कैसे किया, यही आगे देखना है।

७-'अरतिर्जनसंसदि'

परमार्थके साधकको चाहिये कि लोगोंके फेरमें कभी न पड़े। लोग दोमुँहे होते हैं। ऐसा भी कहते हैं, वैसा भी कहते हैं। प्रपञ्चमें रहिये तो कहेंगे कि दोषी है और प्रपञ्च छोड़ दीजिये तो कहेंगे कि आलसी है। आचार-पालन कीजिये तो कहेंगे कि आडम्बर है और आचार छोड़ दीजिये तो कहेंगे महाभ्रष्ट है। सत्सङ्ग कीजिये तो 'बड़े भगत बने हैं' कहकर उपहास करेंगे और सत्सङ्ग न करें तो कहेंगे कि बड़ा अभागा है। निर्धनको दरिद्र कहेंगे और धनीको उन्मत्त कहेंगे। बोलिये तो वाचाल और न बोलिये तो अभिमानी! मिलने जाइये तो खुशामदी और न जाइये तो अभिमानी! विवाह करें तो लम्पट, न करें तो नपुंसक! नि:सन्तानको कहेंगे चाण्डाल है; और जहाँ बाल-गोपाल दिखायी देंगे, वहाँ कहेंगे यह तो पापकी जड़ है। मृदङ्ग जैसे दोनों तरफसे बजता है वैसे ही लोग दोमुँहेसे बात करते हैं। तात्पर्य, 'वमनकी तरह जन भी ग्रहण करते नहीं बनते'; इसलिये जो अपना हित चाहता हो वह 'जनको त्याग कर' हरि-भजनका सरल मार्ग आदर और प्रेमसे स्वीकार करे। 'संसारमें तो धनवान्‌का ही मान होता है।' अपने माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-पुत्रतक भी द्रव्य होनेसे ही अधिक मानते हैं, यह अनुभव तो सभीको है। इसके अपवाद भी हैं, पर उनसे सिद्धान्त ही पुष्ट होता है। पर प्रश्न यह है कि धनके पीछे पड़कर उसीमें सारा जीवन लगा देनेका अन्तिम फल क्या है? 'साथमें तो लँगोटी भी नहीं जाती'। मृत्यु-समयमें अपने प्यारे भी तो किसी काम नहीं आते। तुकारामजी कहते हैं, 'धनको अशाश्वत भाग्य समझो।' अशाश्वतमात्रसे तुकारामजीका जी जैसे उचाट हुआ और शाश्वत परमात्म-सुख प्राप्त करनेका निश्चय हुआ, वैसे ही जन और जनाचारमें समय और बुद्धि लगाना उनके लिये भार हो गया, सङ्गसे जी ऊबा और नि:सङ्ग प्रिय होने लगा।

नको नको मना गुंतूं मायाजालीं।
काळ आला जवळी ग्रासावया॥

'हे मन! मायाजालमें मत फँसो, काल अब ग्रसना चाहता है।' इस प्रकार मनको उपदेश देते हुए तुकाराम श्रीपाण्डुरङ्गकी शरणमें गये। एकान्तमें हरि-नाम-संकीर्तनका सुख यथेष्ट लूटते बनता है और लोग भी वहाँ तंग करने नहीं आते, इसलिये तुकाराम एकान्तमें ही रमने लगे। तुकारामजीका एक अभंग है—'**देवाचा भक्त तो देवासीच गोड**' (भगवान्‌का भक्त भगवान्‌को ही प्यारा होता है)। इस अभंगमें तुकारामजी बतलाते हैं कि भगवान्‌का प्यारा भक्त औरोंका प्यारा नहीं होता' लोग उसे पागल समझते हैं, कोई भी उसे अपना नहीं कहता, वह निर्जन वनमें या ऐसे स्थानोंमें रहता है जहाँ लोग नहीं रहते, वह प्रातःस्नान कर भूत रमाता और कण्ठमें तुलसी-माला धारण करता है, उसका यह भेष देखकर अपने-पराये सभी उसकी निन्दा करते हैं। यह सब तुकारामजीने मानो अपना ही चरित्र संक्षेपसे कहा है, और फिर कहते हैं—'जन्मकर वह सबसे अलग हुआ, इसीलिये वह दुर्लभ होकर भगवान्‌को प्रिय हुआ। तुका कहता है, इस संसारसे जो रूठा उसीने सिद्ध-पन्थपर पैर रखा।' तुकाराम गाँवमें केवल कीर्तनके लिये आते थे, पर इतनेसे भी उपाधि हुई। तुकाराम यह सोचते थे कि सब लोग कीर्तन-श्रवण करें, नाम-सुख भोगें और आत्मोद्धार कर लें। पर कितने ही लोग ऐसे थे कि घर ही सो रहते और कितने भी थे कि कीर्तन आते थे, पर मन लगाकर कभी सुनते नहीं थे! इसलिये तुकारामजी कहते हैं—

'मैं अपना ही विचार करूँ तो अच्छा है, इनके उद्धारका विचार करूँ तो इससे इन्हें क्या? मेरी भी इन्हें क्या परवा? अपना-अपना हित तो सभी जानते हैं, इनकी इच्छाके विरुद्ध इन्हें भगवन्नाम-कीर्तनमें लगाते दुःख होता है। हरि-कीर्तन कोई सुनें, न सुनें या अपने घर सुखसे सो रहें, जो इच्छा हो करें। तुका कहता है, मैं अपने लिये करुणा-प्रार्थना करता हूँ। जिसकी जो वासना होगी वही उसे फलेगी।'

८-कुतर्कियोंके कारण मनक्षोभ

इस प्रकार भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये ही वह अब कीर्तन करने लगे। पर इस अवस्थामें भी अनेक प्रकारके तर्क-कुतर्क लेकर लोग उनके पास आते, कोई बाद उपस्थित करते या कोई शङ्का उठाते और उन्हें तंग करते। तुकारामजीको यह भी बड़ी उपाधि जान पड़ी।

कोणाच्या आधारें, करूं मीं विचार।
कोण देईल धीर, माझ्या जीवा॥

'किसके आधारपर मैं विचार करूँ? मेरे जीको धीरज कौन देगा?' संतोंकी आज्ञासे मैं भगवान्‌के गुण गाता हूँ। मैं शास्त्री नहीं, वेद वेत्ता नहीं, सामान्य शूद्र हूँ। ये लोग आकर मुझे तंग करते हैं, मेरा बुद्धिभेद किया चाहते हैं, बतलाते हैं कि भगवान् निर्गुण-निराकार हैं, इसलिये हे भगवन्! अब तुम्हीं बताओ तुम्हारा भजन करूँ या न करूँ—

कलियुगीं बहु कुशल हे जन । छळितील गुण तुझे गाता॥ ३॥
मज हा संदेह झाला दोहींसवा । भजन करूं देवा किंवा नको॥ ४॥

'कलियुगमें लोग बड़े कुशल हैं। तुम्हारे गुण जो गायेगा उसे ये सतावेंगे। इसलिये मुझे यह संदेह हो गया है कि अब तुम्हारा भजन करूँ या न करूँ!' हे नारायण! अब यही बाकी रह गया है कि इन लोगोंको छोड़ दूँ या मर जाऊँ!

'किसीके घर मैं तो भीख माँगने नहीं जाता, फिर भी ये काँटे जबर्दस्ती मुझे कष्ट देने आ ही जाते हैं। मैं न किसीका कुछ खाता हूँ, न किसीका कुछ लगता हूँ! जैसा समझ पड़ता है भगवन्! तुम्हारी सेवा करता हूँ।'

नाना प्रकारके शुष्क वाद करनेवाले अहंमन्य विद्वान् और भगवत्-भजनका विरोध करनेवाले पाखण्डी मानो हाथ धोकर तुकारामजीके पीछे पड़े थे। तुकारामजीकी निष्ठाको कसौटीपर कसनेके लिये मानो उन्होंने रण-कंकण बाँधा हो। प्रायः प्रत्येक साधकको उत्पीड़न करनेके लिये ऐसे लोग सदा सर्वत्र ही तैयार रहते हैं, पर इन शब्द-छलवादियों और पाखण्डियोंका यही उपयोग होता है कि उनके द्वारा साधकका वैराग्य दृढ़ होता है। भक्तका भक्ति-प्रेम और भी बढ़ता है। साधकको अपने दोष ढूँढ़नेमें भी इनसे बड़ी सहायता मिलती है। तुकारामजीने एक अभंगमें जो यह कहा है कि 'निन्दकका घर पड़ोसमें होना चाहिये' (**निन्दकाचें घर असावें शेजारीं**) इसका भी यही मर्म है। निन्दक, पीडक, वाचाल, कुतर्की, संशयी आदि जीवोंकी आगे जो भी गति होती हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि साधकके आत्मोद्धार-साधनमें इनसे बड़ा काम निकलता है, इसलिये उसके लिये ये एक प्रकारसे गुरु-स्थानीय ही हैं। अस्तु!

'पाखण्डी मेरे पीछे पड़े हैं! हे विट्ठल! मैं उनसे क्या कहूँ! जो मैं नहीं

जानता वही ये मुझसे छलपूर्वक पूछते हैं। मैं इनके पाँव गिरता हूँ तो भी नहीं छोड़ते। तेरे चरणोंको छोड़ और कुछ मैं नहीं जानता। मेरे लिये सब जगह तू ही तू है।'

× × ×

नको दुष्ट संग। पडे भजनांमधी भंग॥ १॥
तुक निषेधितां। मज न साहे सर्वथा॥ २॥
एका माझ्या जीबें। वाद करूँ कोणांसवें॥ ३॥
तुझे वर्णु गुण। कीं हे राखो दुष्ट जन॥ ४॥
काय करूँ एका। मुखें सांग म्हणै तुका॥ ५॥

'दुष्ट-सङ्ग न हो, उससे भजन भङ्ग होता है। तुझे नीचा दिखाते हैं यह मुझसे जरा भी नहीं सहा जाता। अपने अकेले जीसे मैं किस-किससे वाद करूँ? तेरे गुण बखानूँ या इन दुष्टजनोंको रखूँ? तुका कहता है बताओ, एक मुखसे क्या-क्या करूँ?'

९-एकान्तवासका परम सुख

एकान्तवासमें अनुपम लाभ और अपार आनन्द है। केवल एकान्त ही आधी समाधि है। लोगोंकी भीड़से जब तुकारामजीका चित्त उचटा तब उन्हें एकान्त अधिक प्रिय हुआ। 'निरोधका वचन मुझसे नहीं सहा जाता' क्योंकि उससे जीको बड़ा कष्ट होता है। 'जन-सङ्ग छोड़कर एकान्तमें बैठ रहना मुझे अच्छा लगता है।' सङ्ग चित्त-वृत्ति-निरोधमें बड़ा बाधक है।

संगे वाढे शीण न घडे भजन
त्रिविध हे जन बहु देवा॥

'जनसङ्गसे आलस्य ही बढ़ता है, भजन नहीं बनता। भगवन्! ये त्रिविध जन ही अधिक हैं।' 'इनके अनेक छल-छन्द देखनेमें आते हैं।' आनन्दकन्द भगवान् गोविन्दका ही छन्द जो चाहे वह इन नाना छन्दोंके फन्दोंमें न पड़े। एकान्तमें एकनिष्ठभाव स्थिर रखते बनता है, हरि-प्रेम जमाते बनता है। शाब्दिकोंको अपने हितका बोध नहीं होता और तो क्या, हरि-प्रेमी उन्हें शत्रु जान पड़ता है। इसलिये 'अब अकेले ही चुपचाप बैठे रहना अच्छा है।' एकान्त-सुखकी माधुरी क्या बखानी जाय? स्वयं चखकर देखनेसे ही उसका स्वाद मिल

सकता है। एकान्तका प्रिय होना ही ज्ञान-भाग्यका महालक्षण है। ज्ञानेश्वर महाराज गीता ज्ञानेश्वरीके अध्याय १३वेंमें ज्ञानीके लक्षण बतलाते हैं—

'पवित्र तीर्थ, शुद्ध धौत नदीतट, रमणीय उपवन और गुहा आदि स्थानोंमें रहना जिसे अच्छा लगता है; (६१२) जो गिरिगुहाओंमें और सरोवरोंके किनारे ही आदरपूर्वक बस जाता है और नगरमें आकर रहना पसन्द नहीं करता; (६१३) जिसे एकान्तवास अत्यन्त प्रिय होता है, जनसंसद्से जिसे अरति हो जाती है उसीको ज्ञानकी मनुष्याकार मूर्ति जानो।'

ज्ञानीका यह लक्षण तुकारामजीपर ठीक-ठीक घटता है। जनपदसे उनका चित्त हटा, नगरमें रहना उन्होंने छोड़ ही दिया। गोराडा, भामनाथ या भण्डारा, इन्हींमेंसे किसी पर्वतपर वह सारा दिन रहते थे। भण्डारा पर्वतपर पश्चिम तरफ एक गुहा है और उसके पास ही एक झरना है। इसी स्थानमें वह रहते थे। पर्वतके शिखरपरसे चारों ओरका दृश्य बड़ा ही सुहावना है—दूर-दूरतक छोटे-बड़े अनेक पर्वत हैं, चारों ओर हरियाली छायी हुई है, बीचमें इन्द्रायणी बह रही हैं और जहा-तहाँ छोटे-बड़े अनेक जल-प्रवाह दिखायी देते हैं। ऐसे सुशोभित उस भण्डारा-पर्वतको तुकारामजीके समागमसे तपोवन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके हरि-नामसङ्कीर्तनसे भण्डारा-पर्वत गूँजता था। वहाँकी तरु-लताएँ और पशु-पक्षी तुकारामकी पुण्य-मूर्तिके नित्य दर्शन कर आनन्दित होते थे और उनका आनन्द तुकारामजीके हृदयमें भी प्रतिध्वनित होता था। श्रीविट्ठलरंगमें रँगे हुए भण्डारा-पर्वतके इन तपोनिधिकी दिव्य मूर्तिके जिन नेत्रोंने दर्शन किये होंगे वे नेत्र धन्य हैं; और तो और, वहाँके वृक्ष, पौधे, लताएँ, फल-फूल तथा उस पुण्य-भूमिमें विहार करनेवाले पशु-पक्षी और वहाँके चिरकालसे मौन साधे हुए पाषाण भी धन्य हैं! तुकारामजीको एकान्तवास बहुत ही प्रिय और पथ्यकर हुआ। निर्मलीकी जड़ पानीमें डाल देनेसे पानी जैसे स्वच्छ हो जाता है, वैसे ही एकान्तवाससे उनके चित्तकी मलिन वृत्तियाँ स्वच्छ हो गयीं, उनका अन्तःकरण रमणीय और प्रसन्न हो गया। गीताके छठे अध्यायमें '**शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य**' आसन लगानेके लिये 'शुचि देश' का जो सङ्केत किया है उसपर भाष्य करते हुए ज्ञानेश्वर महाराजने एकान्तवासका बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है। वह शुचि अर्थात् पवित्र देश ऐसा सुरम्य होता है कि 'वहाँ सुख-समाधानके लिये एक बार बैठनेसे

फिर (जल्दी) उठनेकी इच्छा नहीं होती, वैराग्य दूना हो जाता है। संतोंने जो स्थान बसाया वह सन्तोषका सहायक, मनका उत्साहवर्धक और धैर्यका देनेवाला होता है। ऐसे स्थानमें जो अभ्यास करता है वह हृदयमें अनुभव वरण करता है। रम्यताकी यह महिमा वहाँ अखण्ड रहती है।' (१६४—१६६) तात्पर्य, एकान्तवासके शुचि प्रदेशमें ज्ञान-वैराग्यका बल दूना होता है, इच्छा हो या न हो तो भी अभ्यास स्वयं ही हृदयमें प्रवेश करता है, चित्तके मलिन संस्कार नष्ट हो जाते हैं और चित्त प्रसन्न होता है, इतना सुख और समाधान होता है कि दिन-रात कैसे बीतते हैं सो भी नहीं जान पड़ता, भगवत्प्रेमके तरङ्गोंमें विहार करते-करते जीव-भावमें ही विलीन हो जाता और अखण्ड अद्वयानन्दका अनुभव प्राप्त होता है; इसीलिये तो साधुसंत गिरि-कन्दराओंमें, नगरसे दूर जलाशयके तीरपर सर्वसङ्ग परित्याग करके बैठ जाते हैं। नगरोंमें बैठे-बैठे चाहे जितने ग्रन्थ पढ़ जाइये या लिख डालिये, व्याख्यान सुनिये या दीजिये, रात-दिन चर्चा कीजिये, तो भी शब्दोंके खिलवाड़के सिवा और कुछ भी इनसे हाथ न आवेगा, अनुभव और उसका आनन्द इनसे बहुत दूर है। नर-नारियोंसे भरे हुए नगरोंमें अनेक प्रकारके संसर्ग होते हैं, उनसे गुण-दोष अपने अंदर भी आ ही जाते हैं; शब्दोंका कोलाहल खूब होता है, पर नि:शब्दका आनन्द नहीं मिलता। एकान्तके बिना ज्ञान नहीं ठहरता, अनुभवका नित्य सुख नहीं प्राप्त होता। सभी सत्पुरुष इसीलिये अपने जीवनके कुछ वर्ष एकान्तवासमें बिताते हैं। घर-गिरस्तीके सम्बन्धमें इस आशयकी एक कहावत भी है कि '**कमाना शहरका और खाना देहातका**' इसी प्रकार परमार्थके विषयमें भी कह सकते हैं कि सत्सङ्गसे उपार्जन करे और एकान्तमें भोगे। एकान्तके बिना परमार्थ अङ्गीभूत नहीं होता, मन निर्मल नहीं होता। तुकारामजीने जो कुछ अध्ययन किया, प्राय: एकान्तमें किया। देहू गाँवमें उनका आना-जाना लगा रहता था पर इतनेसे भी उनका चित्त दु:खी हुआ और इसका बदला उन्होंने एकान्तमें बैठकर ही चुकाया। एकान्तवासके अपने अनुभवके सम्बन्धमें उनके दो अभंग हैं—

वृक्षवलीं आम्हां सोइरीं वनचरें।
पक्षीये सुस्वरें आलवीती॥ १॥

येणें सुखें रुचे एकांताचा वास।
नाहीं गुणदोष आंगा येत॥ ध्रु०॥
आकाशमंडप पृथिवी आसन।
रमे तेथें मन कीडा करूँ॥ २॥
कंथाकुमंडल देह उपचारा।
जाणवीतो वारा अवसरू॥ ३॥
हरिनामें भोजन प्रवडी विस्तार।
करूनी प्रकार सेवूं रुची॥ ४॥
तुका म्हणे होये मनासी संवाद।
आपलाची वाद आपल्यासी॥ ५॥

इस एकान्त उपवनमें, वृक्षवल्ली और वनचर ही हमारे अपने लोग हैं। पक्षी भी सुस्वर गायन कर मनाते रहते हैं। इसी सुखके कारण एकान्तवास अच्छा लगता है, किसीके गुण-दोष अपनेको नहीं लगते। ऊपर आकाशका मण्डप तना है, नीचे पृथ्वीका आसन है; जहाँ मन रमता है वहीं बैठकर आनन्द करता हूँ। हरि-नाम-रसके उत्तम भोजन तैयार कर यथारुचि सेवन करता हूँ। तुका कहता है, मन-ही-मन संवाद-सुख भोगता हूँ, आप ही अपनेसे वाद-विवाद कर लेता हूँ।' ये सब सुख एकान्तमें प्राप्त होते हैं, इसलिये एकान्त मुझे प्रिय है।

खेलों मनासवें जीवाच्या संवादें।
कौतुकें विनोदें निरंजनीं॥ १॥
पचीं पडिलें तें रुचे वेळोबेळां॥
होतसे डोहळा आवडीसी॥ ध्रु०॥
एकांताचें सूख जडलें जिव्हारीं।
वीट परिचारीं बरा आला॥ २॥
जगाऐसी बुद्धि नव्हें आतां कदा।
लंपट गोविंदा झालों पायीं॥ ३॥
आणिक ते चिंता नलगे करावी।
नित्य नित्य नवी आवडी हे॥ ४॥
तुका म्हणे धडा राहिला पडोन।
पांडुरंगी मन विसांवलें॥ ५॥

'निरञ्जन (मायातीत) के चरणोंमें बैठकर कौतुक और विनोदके साथ अपने जीकी बातें किया करता और मनके साथ खेलता रहता हूँ। जो पच जाता है वही बार-बार रुचता है, वह रुचि बराबर बढ़ती ही जाती है। एकान्तका सुख ही अब हृदयमें बैठ गया है, जनसंग और बाह्य उपाधियोंसे चित्त उचट गया है। अब जग-जैसी बुद्धि ही नहीं रही, भगवान्‌के चरणोंका लम्पट हो गया हूँ। अब और कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती, यह माधुर्य ऐसा है कि नित्य नया आनन्द मिलता है। तुका कहता है, अब यही अभ्यास हो गया है। श्रीपाण्डुरङ्गमें मनको विश्राम मिल गया है।'

श्रीपाण्डुरङ्गके चरणोंमें आपको वह विश्राम-सुख मिला कि आपके मनकी सारी चिन्ता और व्याकुलता दूर हो गयी, और श्रीपाण्डुरङ्गके चरणोंमें आपको वह आनन्द मिलने लगा जिसके निरन्तर भोगते रहनेकी इच्छा ही बढ़ती जाती है, और यही इच्छा, यही रुचि नित्य नये स्वाद ले रही है। यह नित्य नया आनन्द भोगिये, खूब भोगिये; काल आनेपर इसी आनन्दके गर्भसे श्रीकृष्णका जन्म होनेवाला है, तब हमें भी उनके जन्मपर बधाईकी मिठाइयाँ मिलेंगी। उन्हींके लिये हम अधीर हो उठे हैं।

१०-अहंकार कैसे गला?

जीवमें अहंकार सहज ही होता है! आत्मस्वरूपको वह ढाँके रहता है, इसीलिये शास्त्र बतलाते हैं कि अहंकार तामस है। उस तमोमय अहंकारके अनन्त प्रकार हैं! देह मैं हूँ, जीव मैं हूँ, ब्रह्म मैं हूँ, ये सब अहंकारके ही भेद हैं। देह मैं हूँ, इसे मलिन अहंकार कह सकते हैं और ब्रह्म मैं हूँ, इसे उज्ज्वल अहंकार कह सकते हैं। 'देह मैं हूँ' कहनेके साथ ही अहंकारकी लाखों चिनगारियाँ निकलती हैं। रूप, धन, विद्या, गुण, कीर्ति आदि जीवके अहंकारके विषय होते हैं। देश, भाषा, धर्म, वर्ण, जाति, कुल आदि भी अहंकारके विषय बनते हैं। वेदान्त-शास्त्र यह बतलाता है कि गुण-दोष प्रकृति-स्वभाव है इसलिये जीवको उनसे कोई हर्ष-विषाद न होना चाहिये, एककी स्तुति और दूसरेकी निन्दा करनेका भी वस्तुतः कोई कारण नहीं है; पर मजा यह है कि ज्ञानी-अज्ञानी सबके सिरपर यह अहंकार सवार रहता है। प्रकृतिके परे जो परमात्मा हैं उनकी ओर जबतक आँखें नहीं लग जातीं तबतक यह अहंकार किसीको भी नहीं छोड़ता।

जीव और परमात्माके बीच यह परदा लटक रहा है, जबतक यह नहीं हटता तबतक परमात्माके दर्शन भी नहीं होते। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि 'बहु धन त्याग दो, अपना शब्दज्ञान भूल जाओ, सबसे छोटे बन जाओ, ऐसा करनेसे समीप मेरे आओगे।' (ज्ञानेश्वरी ९—३७८) यह सच है, पर भगवत्कृपाके बिना अहंकार सर्वथा दूर नहीं होता। जैसे-जैसे अहंकारका एक-एक परदा फटता जायगा वैसे-वैसे परमात्मा सम्मुख होते जायँगे, जब सब परदे फट जायँगे तब उनसे मिलन होगा। अहंकार विद्वानोंके पीछे तो सबसे अधिक लगता है। ज्यों ही कोई कला या विद्या प्राप्त हुई त्यों ही यह उसके आड़में अपना आसन जमाता है। कोई गुण या विद्या न होते भी अहंकारका उग्र हो उठना केवल अज्ञान और मूर्खत्वका लक्षण है। चित्तमें ऐसे अहंकारको पालते-पोसते हुए ऊपरी दिखावमें नम्रता धारण करना धूर्तोंकी एक धूर्तता है, उससे कल्याणका साधन कुछ भी नहीं होता। अहंकार मौजूद है और इसे जानकर क्लेश भी होता है, यह साधक लक्षण है। और अहंकार 'है तो कहाँ है, इसका कोई स्मरण ही नहीं' यह ज्ञानवान्का लक्षण है। अस्तु! तुकारामजीको पहले-पहल जब लोग जानने और मानने लगे, उनका जहाँ-तहाँ सम्मान होने लगा, लोगोंपर उनकी वाणीका प्रभाव पड़ता दीखने लगा तब अहंकारकी कुछ उपाधि उन्हें भी होने लगी थी। पर तुकारामजी गाफिल नहीं थे, उन्होंने इस चोरको अंदर घुसते देख लिया और भगवान्को पुकारा, ऐसा पुकारा कि अहंकारकी वृत्ति ही उनकी मिट गयी। भगवत्प्रेम जैसे-जैसे बढ़ता है कर्ता भगवान् हैं, मैं नहीं—यह जो कुछ है भगवान्का है मेरा नहीं, यह भाव जैसे-जैसे बलवान् हो उठता है तैसे-तैसे अहंकारकी हवाका बहना भी बन्द होता जाता है।

पदोपदीं नारायणा। तुमची करीन भावना॥

'पद-पदपर हे नारायण! तुम्हारा ही ध्यान करूँगा'—इस अन्तरङ्ग अभ्याससे यह सब नारायणरूप भासने लगता है और उसके साथ अहंकार भी नष्ट होता जाता है। अहंकारादि सब जीव-भावोंके नष्ट होनेका एक ही उपाय है और वह है चित्तको प्रेमानन्दके साथ नारायणके ध्यानमें लगा देना। तुकारामजीने भक्तिके बलसे ही इन सब वृत्तियोंको जीता। अहंकार, लोकप्रियता, मान—ये सब लोकैषणाओंके बादल उत्कट भक्तिके सूर्योदयके होते ही गल

गये। इस उत्कट भक्तिका उन्हें जो अभ्यास करना पड़ा वह उन्हींके मुखसे सुनें। एकान्तमें भगवान्‌को पुकारते हुए उनके मुखसे जो वचन निकले हैं उन्हें सावधान होकर श्रवण करें—

हीन माझी याती। वरि स्तुति केली संती॥ १॥
अंगीं वसूं पाहे गर्व। माझें हरावया सर्व॥ ध्रु०॥
मी एक जाणता। ऐसें वाटतसे चित्ता॥ २॥
राख राख गेलों वायां। तुका म्हणें पंढरिराया॥ ३॥

'जाति मेरी हीन होनेपर भी संतोंने मेरी स्तुति की। इससे मेरे अन्दर गर्व घुस बैठना चाहता है इसलिये कि मेरा सर्वस्व हरण करे। चित्तको ऐसा जान पड़ रहा है कि मैं ही एक ज्ञाता हूँ। तुका कहता है, हे पण्ढरिनाथ! मेरा जीवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है, अब रक्षा करो, प्रभु, रक्षा करो।'

* * *

मजपुढें नाहीं आणीक बोलता। ऐसें काहीं चित्ता वाटतसे॥ १॥
याचा कांही तुम्हीं देखावा परिहार। सर्वज्ञ उदार पांडुरंगा॥ ध्रु०॥
कामक्रोधें नाहीं सांडिलें आसन। राहिले बसो न देहामध्यें॥ २॥
तुका म्हणे आतां जालों उतराई। कळों यावें पाईं निरोपिलें॥ ३॥

'चित्तको कुछ ऐसा जान पड़ रहा है मानो मेरे सामने और कोई वक्ता ही नहीं है। हे सर्वज्ञ उदार पाण्डुरङ्ग! इसका कुछ परिहार तो कीजिये। काम-क्रोधने अभी आसन नहीं छोड़ा, देहमें जमे हुए हैं। तुका कहता है, अब मेरे ऊपर कुछ भार न रहा। आप जानें, आपके चरणोंमें सब निवेदन कर दिया।'

इस प्रकार भगवान्‌के सामने अपना हृदय खोलकर रख देना और हर काममें उनसे सहायता माँगना बड़ी उत्कट भक्ति है। चित्तमें अहङ्कारकी ऐसी वृत्तियाँ उठती हैं जिनसे यह भासने लगता है कि मैं बड़ा पण्डित हूँ, मैंने बहुत पढ़ा है, कितने ग्रन्थ देख डाले हैं, मैं उत्तम वक्ता हूँ, ज्ञाता हूँ, उत्तम कीर्तनकार हूँ इत्यादि। परन्तु भगवन्! ये वृत्तियाँ सर्वस्व छीननेवाली हैं, इसलिये आप ही दयाकर इनका परिहार कीजिये। हे नारायण! आप सर्वज्ञ हैं, उदार हैं, समर्थ हैं। आप इस अहङ्कारको मेरे चित्तसे निकाल बाहर कीजिये।

कथनी पठणीं करुनि काय। बांचुनि रहणी वायां जाय॥ १॥

'कथनी-पठनी करके क्या होगा? बिना रहनीके सब व्यर्थ ही जाता है।'

ग्रन्थावलोकन खूब किया और लोगोंको ज्ञान भी खूब बताया; पर वह ज्ञान रहनीमें—आचरणमें यदि न आया तो उससे क्या लाभ? मुखसे तो अमृतवाणी निकल रही है पर स्वयं भूखसे व्याकुल हैं तो ऐसी वाणी हुई तो क्या और न हुई तो क्या? चीनीकी चासनीमें यदि पत्थर डाल दें तो उस पत्थरको उस चासनीसे क्या? मधुमक्खी मधु जमा कर रखती है पर उसके छत्तेको कोई और ही मार ले जाता है। लोभी कौड़ी-कौड़ी जोड़कर द्रव्य संग्रह करता है और उसे जमीनमें अपने हाथसे गाड़ रखता है पर वह दूसरोंके हाथ आता है, इसके हाथ और मुँहमें मिट्टी ही लगती है। इस प्रकार अनेक मार्मिक दृष्टान्त देखकर तुकारामजी कहते हैं—

आपुलें केलें आपण खाय। तुका वंदी त्याचे पाय॥ ६॥

'अपना किया जो आप खाता है तुका उसके चरण-वन्दन करता है।'

महाप्रयास करके गुरु-शास्त्र-मुखसे ज्ञानार्जनकर जो उस ज्ञानान्नको स्वयं भक्षण करता हो, अपने ज्ञानभोगसे जो आप ही तृप्त होता हो, जिसका ज्ञान आचरणमें उतर आया हो वही वक्ता धन्य है! स्वयं ज्ञान भोगकर जो दूसरोंको ज्ञान-भोज देता है वह ज्ञानदाता धन्य है! हरिकीर्तन करते हुए ज्ञानानन्दकी वर्षा करके श्रोताओंके अन्तःकरणोंको शान्त और निर्मल करनेवाला जो हरिभक्त कीर्तनकार उस ज्ञानानन्दकी वृष्टिमें भींगकर शान्त हुआ हो, तुकारामजी कहते हैं कि उसके चरणोंका मैं दासानुदास हूँ, मुझमें यह सामर्थ्य नहीं, लोग मेरी कथा सुनकर डोलने लगते हैं। पर मुझे अपनी वाणी नीरस ही जान पड़ती है, क्योंकि भगवन्! आपका उसमें प्रसाद नहीं, आपका उसमें आसन नहीं।

'अब हे पाण्डुरंग! अब क्या कहूँ! कोरी बातोंसे ही इस वैखरीकी खातिर मत कीजिये। वह प्रेमा भक्ति दीजिये जो सौभाग्यकी सीमा है। तुकाको अपना प्रसाद दीजिये।'

११ स्वदोष-निवेदन

भगवन्! मैं नित्य आपके गुण बखानता हूँ, श्रोताओंपर भक्तिभाव छा देता हूँ, लोग मेरी प्रशंसा करते हैं, पर मेरे अन्दर वह रस नहीं, कहनी-जैसी करनी नहीं!

'तुम्हें देखनेकी इच्छा करता हूँ, पर इसके अनुकूल आचरण नहीं बनता; जैसे कोई बाहरी वेष बना ले, सिर मुँड़ा ले, दण्ड धारण कर ले, पर मन न मुँड़ावे।'

* * *

'मैं अपने ही चतुर बन बैठा हूँ' पर हृदयमें कोई भाव नहीं है, केवल यह अहङ्कार हो गया है कि मैं भक्त हूँ। अब यही बाकी रह गया है कि नष्ट हो जाऊँ, क्योंकि काम-क्रोध अंदर आसन जमाये हुए बैठे ही हैं। लोगोंके गुण-दोष ढूँढ़ते-निकालते मेरे ही अंदर आकर बैठ गये, बुद्धिमें प्राणियोंके प्रति मात्सर्य आ गया। तुका कहता है, लोगोंको मैं उपदेश देता हूँ पर मैं तो एक दोषको भी पार नहीं कर पाया।'

मैं कीर्तन करता हूँ, नाचता हूँ, गाता हूँ; पर अन्तःकरण मेरा अभी पत्थर-सा ही कठोर बना हुआ है, वह प्रेम ही अभी नहीं मिला जो उसे पिघला दे। प्रेमकी बातें तो मैं बहुत कहता हूँ पर प्रेमसे चित्त अभी नृत्य नहीं करता, नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधारा नहीं बह निकलती। चिन्तन-सुखसे हृदय अभीतक प्रेममय नहीं हो उठता।

बोलविसी तैसे आणी अनुभवा। नाहीं तरी देवा विटंबना॥

'जैसे तुम बुलवाते हो वैसा अनुभव यदि नहीं होता तो हे भगवन्! यह विडम्बना ही नहीं तो और क्या है?'

मीठा हो पर उसमें मिठास न हो तो वह मीठा क्या? शरीर-शृङ्गार हो पर उसमें प्राण नहीं, स्वाँग हो पर उसमें तन्मयता नहीं, रूप हो पर उसमें गुण नहीं, सम्पत्ति हो पर सन्तति नहीं तो इनके होनेमें क्या रखा है? तुकारामजी कहते हैं कि ऐसा ही मेरा हाल हो रहा है और अंदर प्रेमभावका पता ही नहीं लगता है कि कहाँ है। इससे अच्छा तो तुकारामजी कहते हैं कि यही है कि लोगोंमें मेरी बदनामी हो, साधु कहकर जो लोग मेरी सेवा करते हैं वे सब निन्दा करते हुए मेरा तिरस्कार करें, क्योंकि ऐसा होनेसे मैं तुम्हारी सेवा एकान्त मनसे कर सकूँगा।

'पापकी मैं गठरी हूँ। अपने पैरोंमें मैंने अपनी चरणसेवा रूप चोर बैठा रखा है। दण्ड दो मुझे हे नारायण! और मेरा मान-अभिमान उतारो। हे भगवन्! धूर्तता करके लोगोंसे मैं अपनी सेवा कराता हूँ। तुका तेरा हुआ न संसारका, दोनोंसे गया, केवल चोर बना रहा!'

सच्चे हरि-प्रेमसे अन्तरंग रँगने लगा, सारा खेल श्रीहरिका है, वही कर्ता, हर्ता, भर्ता है, जीवके अहंभावके लिये कहीं जरा-सी भी जगह नहीं, नरकका द्वार अभिमान भगवान्‌से अलग करनेका ही काम करता है, यह सत्य जैसे-जैसे तुकारामजीको प्रतीत होने लगा तैसे-तैसे जन-मान पानेकी इच्छा उनकी समूल नष्ट हो गयी। लोग साधु-महात्मा कहकर भजते हैं, देवता कहकर पूजते हैं, स्तुतिस्तोत्र गाते हैं, प्रेम और आग्रहसे उत्तम मिष्टान्न भोजन कराते हैं, इस समूचे लोकादरकाण्डसे तुकारामजीका जी ऊब गया, उनके ध्यानमें यह बात आ गयी कि यह जन-मान मुझे धरतीपर पटककर मेरे परमार्थका सत्यानाश करनेवाला है। जिस मान, सेवा, स्तुति और गौरवके लिये ज्ञानी भी तरसा करते हैं उसके तापस तुकारामजीका चित्त दग्ध होने लगा, जन-मानका वह ताप उनके लिये दुस्सह हो उठा!

भक्ता म्हणे जन। परी नाहीं समाधान ॥ १ ॥
माझें तळमळी चित्त। अँतरलें दिसे हित॥ २ ॥
कृपेचा आधार। नाहीं, दम्भ जाला फार॥ ३ ॥

'जन कहते हैं, तुम भक्त हो; पर इससे समाधान नहीं होता। चित्त विकल रहता है, हित दूर ही रह जाता है। कृपाका आधार नहीं, केवल दम्भ बढ़ गया है।'

'नव्हे सुख मज न लगे हा मान। न राहे हे जन काय करूँ॥ १ ॥
देह उपचारें पोळतसे अंग। विषतुल्य चांग मिष्टान्न हें॥ ध्रु० ॥
नाइकवे स्तुति वानितां थोरीव। होतो माझा जीव कासावीस॥ २ ॥
तुज पावे ऐसी सांग कांही कळां। नको मृगजला गोवूंमज॥ ३ ॥
तुका म्हणे आर्ता करीं मांझे हित। काढावें जळत आगींतूनी॥ ४ ॥

'इसमें मुझे कोई सुख नहीं है, ऐसा मान मुझे नहीं चाहिये, पर ये लोग नहीं मानते, क्या करूँ? देहके इन उपचारोंसे शरीर झुलस रहा है, यह उत्तम मिष्टान्न विष-सा लग रहा है। लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं पर मुझसे वह सुनी नहीं जाती, जी छटपटाया करता है। तुम जिसमें मिलो ऐसी कोई कला बताओ, मृग-जलके पीछे मत लगाओ। तुका कहता है, अब मेरा हित करो, इस जलती हुई आगसे निकालो।'

* * *

लोक म्हणती मज देव । हा तों अधर्म उपाव ॥ १ ॥
आतां कळेल तें करी । शीस तुझे हातीं सुरी ॥ ध्रु० ॥
अधिकार नाहीं । पूजा करिती तैसा कांही ॥ २ ॥
मन जाणे पापा । तुका म्हणे मायबापा ॥ ३ ॥

'लोग मुझे (ईश्वर) बतलाते हैं, यह तो अधर्म ही पल्ले बाँध लेना है। अब जैसा समझ पड़े वैसा करो, यह शीश तुम्हारे हाथमें और कृपाण भी तुम्हारे हाथमें है। लोग मुझे जैसा पूजते हैं वैसा तो मेरा कोई अधिकार नहीं है; क्योंकि मन तो पापोंको जानता है। तुका कहता है, तुम्हीं मेरे माँ-बाप हो।'

संसार तो बाहरी रंग देखता है, उसीपर मोहित होता है, पर मनका हाल तो मन ही जानता है। लोगोंसे अपनी पूजा कराना तो अधर्म है, अधोगतिका मार्ग है और फिर मैं तो इसके योग्य नहीं। इसलिये कहते हैं कि मुझे दण्ड दीजिये, अपना सिर मैंने आपके हाथोंमें दे दिया है, अधर्मका उच्छेद करनेके लिये ही आपका अवतार है।

'तुम्हारे गुण तो गाता हूँ, पर अन्त:करणमें तुम्हारा भाव नहीं है, केवल संसारमें शोभा पानेका यह एक ढंग हो रहा है। पर तुम पतित-पावन हो, अपनी इस बातको सच करो। मुखसे मैं दास कहाता हूँ पर चित्तमें माया-लोभ-आस भरी हुई है। तुका कहता है, मैं जैसा वेष दिखाता हूँ वैसा अंदर लेश भी नहीं है।'

* * *

'बिना सेवा किये ही दास कहाता हूँ और धूर्ततासे अपना पेट भरता हूँ। तुम्हारे चरणोंमें झूठ भी कहीं चल सकता है? हे पाण्डुरङ्ग! अंदरका हाल तो तुम जानते हो।'

* * *

तुम्ही कृपा केली नाहीं । माझें चित्त मज ग्वाही ॥ २ ॥
तुका मज देवा । मज वायां कां चाळवा ॥ ४ ॥

'तुम्हारी कृपा मैंने नहीं प्राप्त की, मेरा चित्त ही इसमें मेरा साक्षी है। मुझ तुकाको हे भगवन्! क्यों नष्ट होने देते हो?'

कळों आला भाव माझा मज देवा।
पायांवीण जीवा आट केली॥ १॥
जोडूनी अक्षरें केली तोंडपिटी।
न लगे शेवटीं हाती कांहीं॥ ध्रु०॥
देव जोडे म्हणून सांगतसे लोकां।
माझा मीच देखा दु:ख पावे॥ २॥
तुका म्हणे माझे गेले दीन्हीं ठाव।
संसार न पाय तुझे देवा॥ ३॥

'मेरा भाव क्या है सो मुझे अब मालूम हो गया। हे भगवन्! मैंने जो कुछ किया वह तुम्हारे चरणोंके बिना जीवको केवल कष्ट दिया। अक्षर जोड़कर गाल बजाया, उससे अन्तमें कुछ भी हाथ न आया। लोगोंसे कहता फिरा कि भक्तको भगवान् मिलते हैं, पर मैं स्वयं ही दु:ख भोग रहा हूँ। तुका कहता है, इस तरह मेरे दोनों ठाँव गये, संसारसे हाथ धो बैठा और तुम्हारे चरण भी नसीब नहीं हुए।'

* * *

काय आतां आम्ही पोटचि भरावें।
जग चाळवावें भक्त म्हणू॥ १॥
ऐसा तरी एक सांगाजी विचार।
बहु होतों फार कासावीस॥ ध्रु०॥
काय कवित्वाची घालनियां रूढी।
करूँ जोडाजोडी अक्षरांची॥ २॥
तुका म्हणे काय गुंपोनि दुकाना।
राहों नारायणा करूनि घात॥ ३॥

'तो क्या अब पेट ही भरनेका धन्धा करूँ? भक्त कहलाऊँ और जगके पीछे चलूँ? और कुछ नहीं तो यही एक बात बता दीजिये, जी बहुत ही छटपटा रहा है, उसे कुछ तो शान्ति मिले। क्या कविता बनानेकी रूढ़ि चलाकर अक्षरोंको जोड़ा करूँ? तुका कहता है, हे नारायण! बताओ क्या करूँ? क्या दुकानका जाल बुनकर आत्मघात करके रहूँ?'

* * *

नांमाचा महिमा बोलिलों उत्कर्ष।
अंगा कांहीं रस नयेचि तो॥ १॥
तुका म्हणे करा आपुला महिमा।
नका जाऊं धर्मावरी माझ्या॥ २॥

'नामकी महिमा बड़े उत्कर्षके साथ बखानी, पर उसका रस कुछ भी अपने अंदर नहीं पाया। तुका कहता है, भगवन्! अब आप अपनी महिमा दिखाइये, मेरे धर्मका खयाल मत कीजिये।'

ग्रन्थोंको देखा और सुना, वे ही देखी-सुनी बातें मैंने लोगोंसे कहीं, पर मेरे ही अन्त:करणमें नहीं बैठी। जो बोल जैसे सीखे, वैसे मुँहसे निकाले, पर वैसा रस तो नहीं मिला।' अनेक सङ्कल्प चित्तमें भरे हुए हैं, सङ्कल्पका नाश तो नहीं हुआ; पर करूँगा, वह करूँगा इत्यादि बातें मन अभी सोचता ही रहता है। बुद्धिमें स्थिरता नहीं। '**बुद्धि नाहीं स्थिर। तुका म्हणे शब्दा धीर॥**' तात्पर्य ग्रन्थोंका ज्ञान मैं कीर्तनमें लोगोंको बड़े आवेशके साथ बतलाता हूँ सही, पर मेरा चित्त अभी हरिप्रेमसे नहीं भीगा, बुद्धि व्यवसायात्मिका नहीं हुई, नानाविध सङ्कल्पोंसे ग्रसी हुई है और मेरी यह हालत है कि कहता कुछ हूँ और करता कुछ और हूँ, नामकी महिमा लोगोंको बतलाता हूँ, पर वह नाम-रस मेरे अन्त:करणमें नहीं उतरा।

'तोतेको जो सिखा दीजिये वही वह पढ़ा करेगा, मेरी भी वैसी ही दशा है। स्वप्नके राज्य-भोगसे कोई राजा नहीं बनता, परमार्थविषयक मेरा अनुभव भी वैसा ही स्वप्न है। वाणी ही ऐसी अलङ्कृत क्यों हुई जिससे भगवान्के चरण तो दूर ही रह गये? पढ़े हुए शब्दोंका ज्ञान बतलाता हूँ, पर उससे मुझे क्या लाभ?'

संतोंसे भी तुकाराम विनय करते हैं—

'यह बड़ा अलङ्कार मुझे शोभा नहीं देता, मेरे लिये तो यह नकली ही है। मैं तो आपलोगोंकी चरणरजका एक कण हूँ; आप संतोंके पैरोंकी जूती हूँ। मुझे निजस्वरूपकी कुछ भी पहचान नहीं, भजन कर लेता सो भी दूसरोंकी देखा-देखी। मुझे क्षरकी पहचान नहीं, अक्षरकी पहचान नहीं; महाशून्यकी पहचान नहीं; आत्मानात्मविवेक नहीं। तुका क्या है, कुछ भी नहीं, आपके चरणोंमें वह अपना मस्तक रखता है। इतना ही उसका अधिकार जानिये।' इसलिये 'संत'

नामसे मुझे अलङ्कृत मत कीजिये, मैं उसका पात्र नहीं। संत वही है जिसे आत्मसाक्षात्कार हुआ हो, जिसने क्षर, अक्षर और सबका अपने अंदर लय करनेवाले महाशून्यको जाना हो, जिसकी बुद्धिमें आत्मानात्मविवेक सिद्ध हुआ हो। 'संत' नामका अलङ्कार उसीको शोभा देता है; मुझे नहीं।

महात्मा तुकाराम संतोंसे प्रार्थना करते हैं कि आपलोग कृपा कर मेरी स्तुति न करें। स्तुति अभिमानका विष पिलाकर मुझे मार डालेगी। भगवान् अभिमानको क्षमा नहीं करते! मुझे यदि अभिमान हुआ तो मेरे श्रीविट्ठलनाथ मुझे छोड़ देंगे और आपलोग भी छोड़ देंगे।

न करावी स्तुति माझी संतजनीं । होईल यावचनीं अभिमान॥ १ ॥
भारें भवनदी नुतरवे पार । दूरावती दूर तुमचे पाय॥ ध्रु० ॥
तुका म्हणे गर्व पुरवील पाठी । होईल माझ्या तुटी विठोबाची॥ ३ ॥

'संत-सज्जन मेरी स्तुति न करें, उनके स्तुति-वचनोंसे मुझे अभिमान होगा। उस भारसे भव-नदीके पार उतरते नहीं बनेगा और आपके चरण दूरसे और दूर हो जायँगे। तुका कहता है, गर्व हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ जायगा और मेरे विट्ठलनाथ मुझसे बिछुड़ जायँगे।'

१२-सत्सङ्ग

अब हमलोग सत्सङ्गका विचार करें। तुकारामजीको कीर्तनके प्रसङ्गसे सत्सङ्ग लाभ हुआ, भगवान्के गुणानुवाद सुनने और गानेका अवसर मिला।

कथा त्रिवेणी संगम। देव भक्त आणि नाम॥

यह आनन्द अद्भुत है। वाद करनेवाले, निन्दा करनेवाले, छलनेवाले और पाखण्ड रचनेवाले—इन सबकी सङ्गतिसे तुकारामजीको कष्ट ही हुआ; पर इसकी क्षतिपूर्ति सज्जनोंके सङ्गसे हो गयी। संसारमें प्रेमी भावुक और श्रद्धालु सभी स्थानोंमें सदा ही होते हैं। ऐसे लोग कीर्तन-प्रसङ्गसे तुकारामजीकी ओर खिंचे चले आये। इनके सत्सङ्गमें तुकारामजीके आनन्दका क्या पूछना है?

तुका म्हणे येणें आनंदी आनंदु। गोविंदें गोविंदु पिकविला॥

'तुका कहता है, इससे आनन्द-ही-आनन्द हो गया, गोविन्द (बीज) से गोविन्दकी फसल तैयार हो गयी।'

तुकाराम सत्सङ्गके लाभ बतलाते हैं—

हरिदास जब मिलते हैं तब सब पाप-ताप, दैन्य और जंजाल छूट जाता है। तुका कहता है, वैष्णवोंके चरण-दर्शन करनेसे मनको समाधान हुआ।

* * *

वैराग्याचें भाग्य । संतसंग हाचि लाभ॥ १ ॥
संत कृपेचे हे दीप । करी साधका निष्पाप॥ ध्रु० ॥
तुका प्रेमें नाचे गाये । गाणियांत विरोनि जाये॥ ३ ॥

'सत्सङ्ग-लाभ ही वैराग्यका सौभाग्य है। संत-कृपाके ये दीप साधकको निष्पाप कर डालते हैं। इन संतोंके बीचमें तुका प्रेमसे नाचता-गाता है और गानोंमें लीन हो जाता है।'

* * *

'जिसके हृदय-सम्पुटमें नारायण भर गये अथवा जो भावुक और विश्वासी हैं, तुका कहता है, मैं उन्हें वन्दन करता हूँ।'

× × ×

'संत-चरणोंकी रज जहाँ पड़ती है वहाँ वासनाका बीज सहज ही जल जाता है। तब राम-नाममें रुचि होती है, और घड़ी-घड़ी सुख बढ़ने लगता है। कण्ठ प्रेमसे गद्गद होता, नयनोंसे नीर बहता और हृदयमें नामरूप प्रकट होता है। तुका कहता है, यह बड़ा ही सुलभ सुन्दर साधन है, पर पूर्व-पुण्यसे ही यह प्राप्त होता है।'

× × ×

'संत-चरणोंकी रजका अनुभव मुझे अपने अंदर प्राप्त हुआ, इसके सेवनसे वह सुख मिला जिसमें कोई दुःख नहीं होता।'

× × ×

'काया, वाचा, मनसा मैं हरिदासोंका दास हुआ। कारण, हरिदासोंके हरि-कीर्तनमें प्रेम-ही-प्रेम भरा है, करताल और मृदङ्गका कल्लोल है। दुष्टबुद्धि सब नष्ट हो जाती है और हरि-कीर्तनमें समाधि लग जाती है।'

× × ×

'संत-मिलनकी बड़ी इच्छा थी, बड़े भाग्यसे वह मिलन हुआ। तुका कहता है, इससे सब परिश्रम सफल हो गया।'

× × ×

यहाँ 'संत' शब्दका अर्थ अच्छी तरहसे समझ लेना चाहिये। तुकारामजीने इन अभंगोंमें हरिदास (हरि-कीर्तन करनेवाले), भावुक, प्रेमी वारकरी इन सबको ही संत कहा है। 'संत' शब्दका इतना व्यापक प्रयोग जो तुकारामजीने किया, इससे क्या समझा जाय? क्या उस समय संतोंकी इतनी भरमार हो गयी थी या तुकाराम अपनी सिधाईसे सबको ही संत समझते और कहते थे? नहीं, ये दोनों कल्पनाएँ गलत हैं। सच्चे संत तो सदा ही दुर्लभ होते हैं। ऐसे संत तुकारामजीके समयमें थे और तुकारामजीका उनसे समागम भी हुआ था। चिन्तामणि देव, पूनेके अनगढ़शाह, नगरके शेख महम्मद, बोधले बाबा और दठणकर बोवाके साथ उनकी भेंट-मुलाकात थी और वृद्धावस्थामें समर्थ रामदाससे भी उनकी भेंट हुई थी। पर ऐसे संत तो विरले ही होते हैं। सच्चे संतोंके लक्षण तुकारामजीने अपने अभंगोंमें दिये हैं। तुकाराम संत किसको मानते थे, संतोंकी उनकी कसौटी क्या थी इसका वर्णन पहले आ चुका है। संतोंके सम्बन्धमें उनकी कसौटी सामान्य नहीं थी। फिर यह बात भी नहीं है कि तुकाराम किसीको अज्ञानसे या भोलेपनसे संत कहते। उन्होंने बने हुए भेषधारी, साधुओं, पाखण्डियों और दाम्भिकोंकी खूब खबर ली है। तुकारामजीकी सत्यनिष्ठा इतनी ज्वलन्त, भक्ति इतनी आन्तरिक और वाणी न्यायमें ऐसी निठुर थी कि झूठ उन्हें जरा भी सह्य नहीं था। उनके समयमें न तो संतोंकी ही रेल-पेल थी और न तुकाराम ही भोले-भाले थे। तब उन्होंने 'संत' शब्दका प्रयोग इतना ढीला-ढाला क्यों किया है? इसका समाधान यह है कि कई स्थानोंमें तो उन्होंने इस शब्दका प्रयोग गौरवार्थ किया है। सब वारकरी तुकाराम नहीं थे। किसी भी सम्प्रदायमें सामान्य जन-समूह जैसा होता है वैसे ही वारकरी भी थे। पर सम्प्रदाय-प्रवर्तकोंको अपना सम्प्रदाय बढ़ानेके लिये सामान्योंमें भी जो कुछ विशेष हुए, जिनमें उत्साह, दक्षता आदि गुण कुछ अधिक मात्रामें दीख पड़े उन्हें गौरवान्वित कर और अधिक कार्यक्षम बनानेके हेतु उन्हें सम्मान देकर उत्साहित करना होता है! इसमें कोई धूर्तता या झूठ हो ऐसी बात नहीं है। जो लोग यह समझते हैं कि हमारा सम्प्रदाय जनसमाज और राष्ट्रके लिये कल्याणकारक है, इसका प्रचार होना आवश्यक है, इससे लोगोंका उद्धार होना चाहिये, वे हर तरहसे उस सम्प्रदायको बढ़ानेका

उद्योग करते हैं।* इसके लिये उन्हें उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ सब प्रकारके लोगोंको सँभाले रहना पड़ता है। इस न्यायसे नामदेव-एकनाथके समयसे यह रिवाज-सा चला आया था कि गलेमें माला डाले नियमपूर्वक पण्ढरीकी वारी करनेवालोंको, कथा-कीर्तन-भजनमें रमनेवालोंको, श्रीविट्ठलनाथकी प्रेमसे उपासना करनेवाले वारकरियोंको, विशेषकर कीर्तनकारोंको तथा भजनमण्डलियोंके नेताओंको 'संत' ही कहकर गौरवान्वित किया जाता था। तुकारामजीने भी इसी प्रकारसे अनेक स्थानोंमें 'संत' शब्दका प्रयोग गौरवार्थ ही किया है। जो श्रीविट्ठलके दास हैं, भजन करनेवाले वारकरी भक्त हैं, भजन-कीर्तनमें जिनका साथ होनेसे कीर्तनका आनन्द सबको प्राप्त होता है, लोक-कल्याण-साधक कीर्तन सम्प्रदायकी वृद्धिमें जिनसे सहायता मिलती है, उन्हें कृतज्ञताके साथ गौरवान्वित करना सौजन्यका ही लक्षण है। तुकारामजीके सङ्ग करताल बजाते हुए भजन करनेवाले भक्त या उनका कीर्तन सुननेवाले श्रोता सभी तो तुकाराम नहीं थे। देश-भक्तोंमें शिवाजी-जैसा कोई विरला ही होता है वैसे ही वारकरियोंमें भी तुकाराम कोई विरला ही हो सकता है! इसके अतिरिक्त अपना भक्ति-प्रेमानन्द जिनका सङ्ग होनेसे बढ़ता है, ज्ञान-वैराग्य प्रज्वलित हो उठता है, जिनके मिलनेसे हृदयमें भक्त-रसकी बाढ़ आती है, उनमें कोई दोष भी हो तो भी उन दोषोंकी उपेक्षा करना या काल पाकर ये दोष नष्ट होनेवाले हैं यह जानकर उनका प्रेम बनाये रहना सज्जनोंका तो स्वभाव ही है। समुदायमें सब प्रकारके लोग होते ही हैं। तुकारामजी कहते हैं—

हरि-भक्त मेरे प्यारे स्वजन हैं। उनके चरण मैं अपने हृदयपर धरूँगा। कण्ठमें जिनके तुलसीकी माला है, जो नामके धारक हैं वे मेरे भव-नदीमें तारक हैं। आलस्यके साथ हो, दम्भसे हो अथवा भक्तसे हो, जो हरिका नाम गाते हैं वे मेरे परलोकके साथी हैं। तुका कहता है, मैं उनके उपकारोंसे बँधा हूँ, इसलिये संतोंकी शरणमें आया हूँ।'

× × ×

* इस समय भी ऐसा ही होता है। देशका काम करनेवालोंको 'देश-भक्त' कहकर गौरवान्वित किया जाता है। शिवाजी महाराजकी-सी देशभक्ति जिसमें हो वही सच्चा देश-भक्त है, पर देशकी किञ्चित्-सी सेवा करनेवालोंको भी देश-भक्त कहकर गौरवान्वित करना अनुचित नहीं कहा जा सकता।